चिन्मय प्रकाशन
चौड़ा रास्ता, जयपुर—३

●

द्वारा :
शिक्षा विभाग, राजस्थान के
लिए प्रकाशित

●

प्रथम संस्करण
सितम्बर १९७१

●

मूल्य :
४.२५

●

मुद्रक :
दी
जयपुर
PRASTU

आमुख

शिक्षक-दिवस शिक्षकों के सम्मान का पुनीत दिवस है। शिक्षक का कार्य ही ऐसा है कि वह हर तरह स्वतः सम्मानित है। किन्तु उसके सम्मान में इस दिवस का आयोजन कर राष्ट्र-निर्माण में शिक्षक की भूमिका के महत्व को अधिक व्यापक रूप में स्वीकृत किया जाता है।

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा विभाग राजस्थान की चेष्टा रही है कि शिक्षकों का साहित्यिक कृतित्व प्रकाश में आये। इसी दृष्टि से प्रत्येक शिक्षक दिवस पर विभाग राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों की साहित्यिक कृतियों के संकलन 1967 से ही प्रकाशित करता चला आ रहा है। अब तक हिन्दी, उर्दू और राजस्थानी को कुल मिलाकर 18 पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं। प्रसन्नता की बात है कि भारत भर में अनूठी इस योजना का सर्वत्र स्वागत हुआ है तथा साहित्यिक अभिरुचि के शिक्षकों को आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली है।

आशा है कि शिक्षक दिवस १९७१ पर प्रकाशित इन पुस्तकों (प्रस्तुति-३, प्रणियति-३ तथा सन्निवेश-४) का सर्वत्र स्वागत होगा।

राजस्थान के प्रकाशकों ने इस योजना में आरम्भ से ही पूरा पूरा सहयोग प्रदान किया है और इन प्रकाशनों को सुन्दर बनाने में परिश्रम किया है। इसी प्रकार शिक्षक—लेखकों ने भी अपनी रचनाएं भेजकर विभाग को सहयोग प्रदान किया है। इसके लिए लेखक तथा प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के अधिकारी हैं।

लक्ष्मीनारायण गुप्ता,
निदेशक,
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा,
राजस्थान, बीकानेर

शिक्षक दिवस, १९७१

प्राक्कथन

शिक्षा विभाग द्वारा राजस्थान के साहित्यिक अभिरुचि सम्पन्न शिक्षकों की रचनाओं के संकलन-प्रकाशन का यह पांचवां वर्ष है। शिक्षकों की सम्पूर्ण कृतियों के अतिरिक्त ऐसे कुल १२ संकलन प्रकाशित हो चुके हैं- प्रस्तुति (कविता संग्रह) ३, प्रतिश्रुति (कहानी संग्रह) ३, सन्निवेश (विविध) ४, कैसे भूलं (शिक्षक जीवन के महत्वपूर्ण क्षण) २।

साहित्यिक प्रतिभा-सम्पन्न शिक्षकों को प्रकाशन सुविधा निरन्तर उपलब्ध कराते रहने की दृष्टि से इस योजना का जहाँ सर्वत्र स्वागत हुआ है वहीं समालोचकों ने बार-बार स्तरहीनता की बात कही है। समालोचकों का यह आक्षेप उनकी दृष्टि से सही हो सकता है क्योंकि, शायद, वे इन पुस्तकों में संकलित रचनाओं को समालोचना के नवीनतम मानकों और साहित्य-सृजन की नवीनतम उपलब्धियों की पृष्ठ भूमि में आंकते हैं, जो अनुचित भी नहीं कहा जा सकता। पर यह भी सही है कि उन्हें संकलनों में ऐसा भी कुछ, चाहे वह बहुत कम ही क्यों न रहा हो, मिला है जिसे उन्होंने सराहा है।

समालोचकों की पैनी आलोचना का ही शायद यह सुफल है कि संकलन के स्तर निरन्तर स्तरवृद्धि की ओर प्रयत्नशील रहे हैं। प्रकाशनार्थ आने वाली रचनाओं की बहुलता शिक्षकों के उत्साह की ही द्योतक नहीं है, उनके वास्तविक सृजन-धर्मा बनने के प्रयास की भी द्योतक है। उनका यह प्रयास किसी एक विधा या प्रवृत्ति से बंधकर चलने का नहीं है। साहित्य के उफानी आन्दोलनों के प्रवक्ता या ओढ़ना भी नहीं है ये लोग। साहित्यिक व्यावसायिकता की प्रतिबद्धता भी इनमें नहीं है। इसलिए पत्र पत्रिकाओं की मांग पूर्ति हेतु उत्पादित रचनाएं लिखने के आदि भी नहीं हैं ये लेखक। जो अनुभूत होता है उसे अभिव्यक्त कर देते हैं बस, बिना इस बात की चिन्ता किये कि उनकी अभिव्यक्ति किनकी रुचियों से कम पटेगी या बाजार में क्या कीमत होगी।

इसमें कोई दो राय नहीं कि किसी प्रवृत्ति या आन्दोलन विशेष से बंधे न होने के कारण इनका अनुभव-क्षेत्र व्यापक है और रचनाओं में वैविध्य। एक नागर मन ही नागरीय जीवन की विभाजक स्थिति से ग्रस्त होने के फलस्वरूप जीवन को निस्सार और बोझिल मानकर उससे कटाव की स्थिति महसूस करने लगे किन्तु एक अध्यापक जो हर क्षण देश के भावी कर्णधारों के 'स्व' के विकसित होने में सहयोग कर रहा है, जीवन के प्रति ऐसा हताश दृष्टिकोण चाह कर भी नहीं अपना सकता। आप चाहें तो इसे थोपा हुआ आदर्श कहें, किंतु वस्तुस्थिति यही है, अध्यापक असन्तुष्ट है, समाज में उसका उतना सम्मान नहीं है, आर्थिक तंगी का शिकार भी वह होता है, अन्य वर्गों की उपेक्षा भी उसे सहनी पड़ती है, जीवनयापन की सुविधायें भी कम उपलब्ध होती हैं—यह सब ठीक है। अन्य नामवर या व्यवसायी लेखकों के साथ भी यह सब होता है या हो सकता है। किन्तु, फिर भी, अध्यापकों में जीवन के प्रति 'नकार' की भावना न पनपकर 'सकार' की प्रवृत्ति ही विकसित होती है। दूसरे, उनका सम्पर्क-सूत्र इतना विस्तृत है कि उनका अनुभव स्वतः विविध भावों को अपने में समेट लेता है।

इस पृष्ठभूमि में इन संकलनों को देखें तो इनमें अनुभव-वैविध्य है, अनुभवों की वह जमीन है जो साहित्यिक दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं मानी जानी चाहिये, संभव है ये अनुभव साहित्य की किसी भावी प्रवृत्ति के निर्माण का आधार बनें।

गुर इकबालसिंह : प्रेम सक्सेना

कवितायें

राजस्थानी कविताएं गीत और दूहे

बंगला देश
कुछ कवितायें

पश्चिमी बंगाल का एक गांव

हमिद खान

इस गांव मे
कतनो शान्ति है,
कितनी नीरवता है,
कितना सुख है ?
लगता है जैसे
लोगो को सांप सूघ गये हैं
या मुर्दों का गाव है या
शायद
फिर कोई कब्रिस्तान है ।

●

बेसहारा शरणार्थी

डॉ. राजानन्द

एक बेसहारा शरणार्थी की तरह
आ गया हूँ इस बड़े शहर में
मकान की तलाश चलाने से पहले
चार टुकड़ों की जुगत बैठाना जरूरी है।
मेरे पास बेचने के लिये
दीमक-खाई-रद्दी की तरह के कुछ संस्कार हैं,
और इस शहर के लोग
खाली गुब्बारे लिये
सडकों पर दौड़ रहे हैं।
ऐम्बेसियों के बाहर फेंके गए खाली लिफाफों में
अपने दिमाग रख कर
ठहाके लगाए जारहे है
कॉफी हाउसो, ससद भवनो और सप्रू हाउस में।
मैं इन आलीशान दफ्तर-भवनों की ऊंचाई
और घिसती हुई सडी बस्ती के छोटे पन को देखकर
घबरा गया हूँ।
यहाँ के लोग,
कबूतर के खानो को
खलिहान समझ कर गुटुरगूं गुटुरगूं करते हैं।
ये मुझे सड़क पर
इस तरह आश्चर्य से देखते है

दक्षिण अमरीका की गोरी-बस्ती में
भूल कर आ गया हूँ।
मेरी गाँव की पचायत में
बोलने वाले रेडियो की तरह
यहाँ के रेडियो भी हर रात गाते हैं
जन गण मन अधिनायक।
मेरे गाँव की गैस लालटेन का मेंटल टूट गया है,
और यहाँ की रोशनी
झगडाखोर मोहल्लेदारिन की तरह
लड़ती है तारकोल की सड़क से।
मैं एक बेसहारा शरणार्थी हूँ
अगर नहीं मिलता है कोई रैन बसेरा
तो न मिले
लौट कर चला जाऊँगा फिर अपने उसी असभ्य गाँव में
न सही रहवासी
आदमियों का सरकस तो देख जाऊँगा।
क्या फुटपाथों पर
गूदड़ों में लिपटे हुए पड़े लोग
संविधान की किसी सुविधा के तहत नहीं आते ?
किसी ने अगर
शहर, देश, या विदेश की नागरिकता
नहीं स्वीकार की
तो कौन सी गो-हत्या हो गई ?
या कि इंग्लैंड की महारानी का दस्ताना फट गया ?
या कि किसी स्वर्गीय प्रेसीडेंट की पत्नी ने जहाजों के
बादशाह से शादी करली ?
या किसी ने स्टालिन के बुत को हटाया,

ग्रोर दूसरों ने उसे
एक कारखाना सम्भलवा दिया ?
या कि बड़े ग्राका माग्रो की
बंदूक-नली फिस फिसा गई ?
जिन्होंने
जिस भी देश का होकर
वहाँ की नागरिकता ली है
तो उन्हें कौन सा खाया हुग्रा स्वर्ग दुबारा प्राप्त हो गया है
ग्रगर कोई भी तगड़ा फौजी
किसी दूसरे नापाक फौजी को चित कर देता है
तो क्या बुरा करता है ?
ग्रौर ग्रगर ह्वाइट हाउस के गिर्जाघर से
बम लदकर, वियतनाम पर बरसते हैं
तो कौन सी ईसा की सलीब चर मरा जाती है,
या बुद्ध की ग्रांखों से ग्रांसू गिरता है ?
ग्रगर रूस के सैनिक
प्राग की सब से ऊँची छत पर चढ़ कर
चैकोस्लोवाकिया की स्वतंत्रता को लाश बना कर
यू. एन. ग्रो. के हॉल में फेंक देते हैं
तो कौन से देश के प्रतिनिधि
शेम ! शेम !
चिल्लाते है ?
सिर्फ चैक का नया खून
ग्रात्मदाह भर कर पाता है,
ग्रौर ग्रगर बंगला देश के
बेजोड़ शेर को
किराये के गीदड़
घेर कर 'हुग्रा' 'हुग्रा' करते है

श्रौर हिजड़ों की तरह उस पर
मुक़दमा चलाते हैं
तो कब दुनिया की चिपकी
हुई ज़बान,
इन्सानी अधिकार की एक
श्रायत भी बोलती है ?
मैं एक बेसहारा शरणार्थी हूँ
भटक कर आगया हूँ
अगर शहर मे
तो फिर लौट जाऊँ
अपने असभ्य गाँव में,
जहाँ,
मूल नक्षत्र में
चाँदी के पाए लिये पैदा हुश्रा था।
मेरा क्या है,
एक बेसहारा शरणार्थी पैदा हुश्रा था,
बेसहारा लौट जाऊँगा गाँव।
श्रोम् शान्ति !
श्रामीन !
गॉड सेव दाई किंगडम!
या अल्लाह
ग्रहुरमज्दा !

●

अमन के फरिश्तों के नाम

—अजेय 'चंचल'

लाशों का कफ़न ओढ़,
अभी तक भी जिन्दा है वहां (बांगला) की धरती।
हो सकता है,
कुछ आदमखोर (भेड़िये) इंसानों ने—
दबोच लिए हों कुछ औरतें और बच्चे!
और!

[प्राकुति

शायद कुछ टुकड़खोर लोग
अपने मजहब को भूल कर,
इंसानियत का गला घोटने पर तुले हों,
मगर,
इसका यह मतलब तो नहीं,
कि आजादी पर मिटने वालों की कौम—
जड़ से उखड़ जाएगी ?
मुझे अफसोस है—
इन सदियों पहले लोगों को सभ्य बने देखकर !
सवाल लाखों निरीह, निहत्थे नागरिकों की मौत का ही नहीं,
आने वाले वक्त के
गौतम, गांधी, सुभाष और मुजीब के
सोते में गले घोट देने का है।
लगता है, युद्ध घर के आंगन में दीवार खींच देने का नहीं,
कुछ झूठे अमन पसंद लोगों की
आदत बन गयी है जंग।
तभी तो नहीं हैं महाशक्तियाँ दंग !
रक्त में नहा रही है निहत्थी मासूमियत।
गोलियों में ढल रही है भटकी इंसानियत।
पता नहीं,
कब खुलेंगे (राष्ट्र-संघ) मन्दिरों के दरवाजे।
और कब तक जागते हुए भी
सोने का नाटक करते रहेंगे अमन के फरिश्ते ?

●

अमन के फ़रिश्तों के नाम

—अज्ञेय

लाशों का कफ़न ओढ़,
अभी तक भी ज़िन्दा है यहां (बांगला) की
हो सकता है,
कुछ आदमखोर (भेड़िये) इंसानों
दबोच लिए हों कुछ औरतें और
और !

सहानुभूति

चारों ओर उफनता जा रहा है
गाढ़े गर्म लहू का एक लाल-लाल दरिया
लगता है—
बंगाल की माटी का रंग
अब कभी सफेद नहीं होगा
लोग जिन्होंने जीने का हक माँग कर
ऐतिहासिक अपराध किया है—
अपने ही लहू की तेज धार में
मरे-अधमरे डूबते-उतरा रहे हैं
और हम—
सिद्धांतवादी बनकर
किनारे पर खड़े-खड़े
नपे-तुले शब्दों में
कभी उनकी हिम्मत पर दाद दे रहे हैं
तो कभी जेब से रूमाल निकालकर
अपनी गीली आँखों को बार-बार पोंछ रहे हैं—
यही क्या कम है हमारे लिये ?

●

पूरब की धरती

—भंवरसिंह सहवाल 'व्याघ्रपज्जा'

तोपों के बरसते गोलों की गड़गड़ाहट
बारूदी धुये के अम्बारो से घुटता हुआ आसमान
खून से लथपथ पूरब की धरती का बेहिसाब चीत्कार
और इस अन्धी-बहरी दुनिया की
सधी हुई चुप्पी !
मानव-अधिकारों की रक्षा के बिल्लों का क्या हुआ ?
हमदर्दी के ठेकेदारों की फैक्टरियों में
ढलते हुए आँसुओं का क्या हुआ ?
क्षोभ होता है
घृणा होती है
फरेबी इन्सानियत के दुम हिलाते कुत्तों को
मतलब के मर्ज की तराजू पर
असहाय, विवश, निहत्थे लोगों को जिन्दगी को
तोलते देखकर।
यह मुखौटों का नाटक कब तक चलेगा ?
खौफ का समन्दर
मुरादों की सुलगती आग को कब तक पियेगा ?

सहानुभूति

—वी. एल. 'अरविन्द'

चारों ओर उफनता जा रहा है
गाढ़े गर्म लहू का एक लाल-लाल दरिया
लगता है—
बंगाल की खाड़ी का रंग
अब कभी सफेद नहीं होगा
लोग जिन्होंने जीने का हक माग कर
'ऐतिहासिक अपराध' किया है—
अपने ही लहू की तेज धार मे
मरे-अधमरे डूबते–उतरा रहे हैं
और हम—
सिद्धांतवादी बनकर
किनारे पर खड़े-खड़े
नपे-तुले शब्दों मे
कभी उनकी हिम्मत पर दाद दे रहे हैं
तो कभी जेब से रूमाल निकालकर
अपनी गीली आंखों को बार-बार पोंछ रहे है—
यही क्या कम है हमारे लिये ?

●

राष्ट्रीय एकता ?

—श्री एम. परमिन्द्र

चारों ओर
मौत के मशीन पहरे में
आदमी की लाश छटपटा रही है
जो कुछ भी सुना जाना चाहिये
वह सभी नारों और टैंकों की
गड़गड़ाहट के बीच
दबकर रह गया है--
सड़क पर लाश है
या लाश ही सड़क है :
कुछ नहीं कहा जा सकता —
खून से लथपथ लाश की लाशों
और तहस-नहस
नंगी लाशों के मलबों के इर्द-गिर्द
मंडरा रहे हैं कुछ
सूट बूट धारी किराये के गिद्ध
जिन्हें शायद
'राष्ट्रीय एकता' की तलाश है
या फिर तलाश है
किसी अच्छे से कब्रिस्तान की,

●

सूत्रपात

—वासुदेव चतुर्वेदी

हैवानियत !
जो,
दुधमुंहे बच्चो,
चोखती जिन्दा लाशो,
मरघट से कफन खींचती
और दूसरे के मुंह का छीन कर
सगीनों की नोंकों पर
इंसानियत को रौंद रही।
कौन सुनता है
कौन देखता है
इंसानियत की खाल में,
हैवानियत के खूंखार भेड़िये,
मानवता को नष्ट करने पर
तुले हुए हैं ?
तानाशाही हुकूमत
सभी नाते रिश्ते भुलाकर
मां बहिनों,
बाप बेटे,
'भाई भाइयों, को'
अपनी रियाया को,
कत्ल कर रही है।

दूसरे बड़े देश
जिनका स्वार्थ है,
जिनकी कूटनीति अंधी है,
जिनके जबान तो है पर,
बोल नही सकते
जिनके कान तो है पर
सुन नही सकते।
सत्ता के ऊंचे तानाशाह जिनके वंशज थे
तैमूर-चगेज और नादिरशाह,
उन्ही के खून मे आज उबाल आया,
पर मेरे दोस्तो, इन्सानियत अभी मरी नही है
तुम्हारा पडोसी हैवान नहीं है
सब कुछ सुन कर
देख कर समझ रहा है—दर्द तुम्हारा
तुम्हारा खून हमारा खून है
हम कधे से कंधा मिलाकर
तुम्हे बचायेंगे।
तुम्हारा खून! आने वाले कल के लिये
नया सूर्य उगायेगा
विजय का रक्त चिन्ह
तुम्हारे मस्तक पर लगायेगा
एक दिन तब सभी कहेगे
तुम्हारा सघर्ष सघर्ष नही
जिन्दगी और मौत के बीच समझौता था!

●

सोनार बांगला एकला चालो

—विमला कपूर

सोनार बांगला
एकला चालो।
पृथ्वी
धुरी
ब्रह्माण्ड
प्रकृति
सब कुछ वही,
पर यह एक बाढ़
प्रकृति की बदसूरती का,
सोनार बांगला
एकला चालो।
मोहनजोदड़ो
हड़प्पा
बम्बे
समाधियां
फिर, फिर वही,
यह होगा एक और पृष्ठ

नागालैण्ड
चारों दरवाजों का
एक-एक हाथ है,
तुम्हारी धरोहर का।
सोनार बागला,
एकला चालो।
बॉम्ब
रॉकेट
यान
विज्ञान
शान्ति से अशान्ति का युद्ध,
यही पर है सीमान्त,
मनुष्य के मस्तिष्क का।
सोनार बागला,
एकला चालो।
आकाश
धरती
वायुमडल
तुममे
सभी जगह शहीदों की आवाज है
यही है प्रमाण तुम्हारे बलिदान का।
सोनार बांगला,
एकला चालो।

कवितायें

इतिहास के इतिहास का ।
सोनार बांगला
एकला चलो ।
हिंगलू
मृत्यु
रक्त
नारीत्व
एक ही बाढ़ में बहाकर
सिंचन हुआ है पाक का ।
सोनार बांगला
एकला चालो ।
चिड़िया
गुडिया
डोली
खोका
मासूमियत का संहार है,
दोहरान हिटलर, नादिर का ।
सोनार बांगला
एकला चालो ।
बचपन
भोलापन
अल्हड़पन
लड़कपन
सीख रहा है कब्रें खोदना
इनमें वही रक्त होगा
भविष्य के फरिश्तों का ।
सोनार बांगला
एकला चालो ।

दिशा हीन
अर्थ हीन
दोप हीन
प्रकार हीन
मशीनगनों की रफ्तार
यह युद्ध है मानवता के अन्त का।
सोनार बागला
एकला चालो।
पेन
फोटोग्राफी
पत्र
चित्रकारी
कोई अर्थ नही रखते,
यह एक चित्र है,
मनुष्य की असमर्थता का
सोनार बागला,
एकला चालो।
घर
बगला
स्कूल
ऑफिस
छोड़-छोड़ कर भाग
यह एक भय था 1947 का
सोनार बागला,
एकला चालो।
काश्मीर
कन्या कुमारी
राजस्थान

नागालैण्ड
चारों दरवाजों का
एक-एक हाथ है,
तुम्हारी धरोहर का।
सोनार बांगला,
एकला चालो।
बॉम्ब
रॉकेट
यान
विज्ञान
शान्ति से अशान्ति का युद्ध,
यही पर है सीमान्त,
मनुष्य के मस्तिष्क का।
सोनार बांगला,
एकला चालो।
आकाश
धरती
वायुमंडल
तुममे
सभी जगह शहीदों की आवाज है
यही है प्रमाण तुम्हारे बलिदान का।
सोनार बांगला,
एकला चालो।

•

कवितायें

पूछते हैं :
आप का बैंक बैलेंस कितना है ?
जमीन जायदाद कितनी है ?
उद्योग कितने हैं ?
उनकी गजी चांद के
रोंगटे,
और कटी नाक की चुटिया
लहरने लगती है
जब लोग आंतों की घिर्री
खोलकर
दिखाते है।
या किसी दीक्षांत समारोह में
अनुशासनहीन, बदतहजीब युवक
सनद को गलत खत को तरह
फाड़ देते हैं।
वे हैरान है
कि लोग अपने जूतों में
इतनी कमजोर नाल क्यों लगवाते हैं
कि सड़क पर घिसी हुई पड़ी मिलती हैं।
उनका कहना है :
उनका मुँह टेढ़ा नही हुआ है
झील को सतह
या तो ऊपर उठ गई है
या दब गई है।

●

त्योहार !

—डॉ० राजानन्द

हर त्योहार या उत्सव
ऐसे बीत जाता है दोस्त
जैसे खेल के मैदान में तालियाँ बजाई गई हों ।
हम वैसे ही हैं दिमाग में और लिबास में
सिर्फ उन्होंने ही नाबदान ढेंक लिये हैं
जिन्होंने जनेऊ धारण किया था कभी ।
क्या फर्क पड़ता है ?
अगर पाले का इस तरफ का दल तेल मालिश करे
और दूसरी तरफ का दल चिथड़े उड़ाये,
खेल ही तो है
हमें तालियाँ बजानी चाहिए ।
हम तालियाँ बजाएँगे ।
इसमें चिड़चिड़ाहट, या कर्तव्य,
या अधिकार का सवाल कहाँ उठता है ?
अब सब नौटंकी हो रही है—झांकी ।
क्रान्ति तभी उठती है
जब जनता सड़क पर पटाखे छोड़ती है,
और बुद्धिजीवी
कॉफी हाउस में बैठकर खबर उगलता है ।
अच्छा है दोस्त,
मॉर्नी का टिकट खरीद,
सिनेमा जाएं
और गिन कि पश्चिमी अभिनेत्री में
कितने रंग और कितनी तरह की पोशाक बदलीं ।

नहीं बन पाते गीत

—डॉ० राजानन्द

अब नहीं बन पाते
रेशमी गीत
एक ऑपरेटर
बैठ जाता है, वादक की जगह।
सूरज की छड़ियाँ
पीट जाती है, रोमानी सपने।
सिहरनें नही उठती,
तनाव
चलाता रहता है
घड़ी की सुई
और दफ्तर की फाइलें।
एक दरोगा
कोड़ा सटकार कर चीखता है :
खामोश रहो !
अपनी पूँछ और रोये चाटो !
रोज सुबह अखबार
उलट जाता है शब्दों का कूड़ा,
चौखट पर।
अब नही बन पाते गीत
एक ऑपरेटर
– जो मैं ही हूँ –
बैठ जाता है वादक की जगह,
और खबरों को बजाय कविता लिखता है।

इतना कुछ होने पर भी

—प्रेम सक्सेना

इतना कुछ होने पर भी
तुम कहते हो
हम दीवाली के दीये जलायें
ईद की सेवइयाँ खायें
और क्रिसमस का पेड़ सजायें
मेरे अनुज अग्रज या पूर्वज जो भी हो
मेरी एक बात सुनो
शायद तुम्हें याद भी होगा
पिछले साल
एक भरे-पूरे कमरे में एक औरत की लाश
को लटका देखकर
तुमने गुस्से में सारे झाड़ फानूस तोड़ दिये थे
और भयातुर मैंने भी मकान के ताला लगा दिया था।
इतना कुछ होने पर भी
सरकारवत तुम कहते हो
तो आओ
हमारे सन्तोष के लिये इतना ही काफी है
जलाना ही है तो दिये नहीं चौराहे जलाओ
पढ़ना ही है तो शायरी नहीं मर्सिया पढ़
और देश की खुशहाली तरक्की के नाम पर
धोखों का जुलूस निकालें।

●

किन्ही एकान्त क्षणों में

—प्रेम सक्सेना

किन्ही एकान्त क्षणो मे तुम्हें समर्पित हुआ।

यह नही कि अस्तित्व खो गया,
यह भी नही कि अस्तित्व रह गया,
होने और न होने के बीच अनिर्णय
और उससे उबर पाने का अहसास
अपने पास रख लिया
बाकी सब तुम्हे दे दिया।

यह नही कि अस्तित्व रह गया
यह भी नही कि अस्तित्व खो गया
किन्हीं एकान्त क्षणो में तुम्हें समर्पित हुआ।

●

दोस्त के नाम

—भागीरथ भार्गव

दोस्त,
अब बन्द करो
हवा में गुब्बारे छोड़ना
फट जाने के लिए ।
या
मौसम की जानकारी के लिए ।

मौसम की जानकारी हो नहीं रही है अब जरा ।
मौसम का बदलाव भी जड़ सा हो गया है ।
प्रतीक्षा और प्रतीक्षा के बाद
फिर और प्रतीक्षा
नहीं अब नहीं
अब बन्द करो
हवा में गुब्बारे छोड़ना ।

बन्द दरवाजों के खुलने की प्रतीक्षा
अब नही। अब उन्हें तोड़ ही डालो
बरसो से भरी सील और गन्ध को
बाहर निकालने में भी समय लगेगा।

पुरान नकशो पर अंगुलियाँ घुमाते-घुमाते
वे मटमैले और धुंधले हो गये हैं
केवल नये और चमकीले रग आने से
भी काम नहीं चलने वाला है
अब तो नये नकशे बनाने ही होगे।

अपनी पीढ़ी को बहुत दे चुके गालियाँ
उनकी क्षमता को जाने बिना उन्हे
नपुंसक और रिरियाती पीढ़ी कहते
तुम्हें बड़ा आया आनन्द।

तुमने फख्र के साथ कहा—हम सब बेवकूफ हैं
और केवल रंगीन गुब्बारों का देते रहे आकर्षण।
दोस्त,
अब बन्द करो
हवा में गुब्बारे छोड़ना
फूट जाने के लिए
या
फिर मौसम की जानकारी के लिए

●

दगाबाज

—भागीरथ भार्गव

भागो-भागो
पकड़ो-पकड़ो
की आवाजों के बीच
विवेकहीन सब दौड़ने लगे ।

बेतहाशा मैं भी भागा
रुका तो मेरे पास एक साथी
आकर हांफने लगा ।

पकड़ो-पकड़ो का शोर
धीरे-धीरे हमें छूने लगा
साथी को पकड़ने बहुत से दौड़े
साथी जमीन पर फाउलिंग के पूर्व की
स्थिति में हो गया ।

आने वालों ने बेदर्दी से
उसे पीटना शुरू कर दिया
मैं साथी पर सीधा लेट गया ।
दगाबाज, धोखेबाज की गालियों के साथ
मेरे ऊपर भी वार होने लगे
जोश-खरोश के साथ अजीब-अजीब नारे
आसमान में उठने लगे ।
मेरी इन्द्रियां धीरे-धीरे शिथिल हो गईं ।

आंख खुली तो पाया—
लाशों के ढेर में दबा हूँ ।

दूर अखबार का छोकरा
मोरारजी देसाई के उपवास की
घोषणा कर रहा था।

मैं ढेर से उठा—
और फिर भागने लगा
मेरे वस्त्र खून से भीगे थे
चेहरा लहूलुहान और विकृत था।

मैंने नगर के चौराहे पर
अपने भाइयों को आवाज दी
उन्होंने मुँह फेर लिया
और कहा—यह दगाबाज है
एक विधर्मी को इसने बचाया।

मैंने लाख कहा—
वह हमारे ही बीच का
एक हमारा भाई का
साथी था।

मेरे उपदेश पर वे
बौखलाये मेरे ऊपर
थूकने लगे।

मैं चौराहे से वापस आया
और फिर लाश के ढेर मे
चुपचाप आकर सोगया।

●

अगली घोषणा

—भागीरथ भार्गव

एक घोषणा के बाद
एकाएक बेहद शोर होने लगा
रंगमंच के कुछ पात्रों ने
अपनी शाही पोशाक उतार दी
और वे भगवा वस्त्र पहन
तीर्थ यात्रा का बहाना करने लगे ।
उद्घोषक की घोषणा पर
अभिजात्य दर्शकों ने

पने चेहरे लटका लिये
नका कहना था—
गमंच त्यागने वाले प्रमुख पात्र
पनी क्रूरता के कारण
यार्थ अभिनय करते थे
सलिए वे उनके प्रिय थे।

मान्य दर्शक जय जयकार के साथ
नमालाएं लेकर उद्घोषक की ओर बढ़े।
स घोर अव्यवस्था पर
कों का भ्रम—"यवनि का पतन"
ीघ्र ही दूर होगया।

दे उठाने वालों ने
ही पोशाक धारण की
र सधे स्वरों में डॉय लॉग बोलने लगे
श्चिमी वाद्य व धुन के स्थान पर
ल, मंजीरो पर लोकधुन उभरने लगी

पात्रों को लेकर प्रदर्शन आगे बढ़ा।
ावा वस्त्रधारी रंगमंच के वे पात्र
िक दीर्घा की अगली पांत में
छों पर वल देते
ढ़ियों पर हाथ फेरते
ातार सीटियां वजा रहे थे।

िक नाटक के अगले अंक की नहीं
ो घोषणा की प्रतीक्षा कर रहे थे।

मैं : अनागत का पिता

—भगवतील ——— प

पड़ गये थे पाँव जाने किस डगर में
आ गया हूँ आज मैं बैसाखियों वाले नगर में।
सब कही उखड़े पलस्तर
सलवटों में दबे बिस्तर
आदमी बस
गुनगुनाहट, बौखलाहट, कसमसाहट
व्यक्त करने
बजा लेता एक ही टूटा कनस्तर।
और जाने भोर को क्या हो गया है ?
रात मेरे द्वार पर यह कौन पागल रो गया है
पड़ोसी कहते कि वह था अपाहिज कोई।
कौन था वह ?
सोचता हूँ, केश अपने नोचता हूँ।
वह नही था गत
क्योंकि वह था पुष्ट
हो नही सकता कभी वह आज
क्योंकि वह है रुष्ट
हो न हो वह था अनागत
भूल से जो आ गया था इस सफर में
निकला जो मुझी में से था।
मैं अनागत का पिता योद्धा धुरन्धर
आज भी हूँ डोलता
इस 'कुछ नहीं' के नगर में।

●

अमृत मर गया

—श्रीकृष्ण विश्नोई

अकेला हूँ,
भीड़ में खड़ा हूँ;
किसे गैर कहूँ
किसे अपना ?
शिकवा-शिकायत में–
यह यों गुजरी जिन्दगी–
कि– यहाँ तो
अपने ही दिल ने –
दगा दिया।
यह जहर यों जिया–
कि अमृत मर गया.

कलाकार

-श्रीकृष्ण बिश्नोई.

कलाकार तेरी कलम-कूची में
जीवन का सत्य उभरता है।
तुम्हारा श्रम !
विश्राम है जगत का।
तुम जब मौत को चुनौती देते हो
हंसते हो –
जिन्दगी पनाह मांगती है
तुम्हारे केवल एक इशारे पर,
युग की दिशा बदल जाती है
तुम्हारे संकेत से,
संगीनों के सिर झुक जाते हैं
और–
तुम्हारी एक आह,
आंसुओं का दरिया बन जाती है।
सुन कलाकार !

यह शाने शौकत !
यह बंगलों की दुनियां,
यह मोटर की मस्ती,

ये चमकती राहें-
तुम्हारी मंजिल नहीं जाती,
तुम्हारा गाँव अलग है ;

तुम उस द्वीप के वासी हो,
जो फेन उगले दरिया की ;
दिशाहीन अंधेरे में भटकी ;-
नौका का जीवन प्राण है ;

ओ कलाकार देख !
न्यूक्लियस बम्बों के गोदाम भर गये हैं
और—
जिन के हाथ में इनकी चाबी है,
जो इनके दरवाजों पर खड़े हैं,
उन की नसें तन आई है ;
चेहरा तमतमा गया है ;
वे किसी भी क्षण पागल हो सकते हैं,
तब !
तुम !
तुम्हारी यह मासूम दुनियाँ ;
सब भाप में बदल जायेंगे
इस से पहले कि यह घटित हो ;
कलाकार !
तुम अपनी कलम कूची से
करुणा, दया, ममत्व, का—
ऐसा बिरवा बो दो कि-
जिस की छाँव तले मनवा का नेह पले।

नुमाइश

—मोम केवलिया

घर घेरे घुटे घुटे
बन्द कमरों में
मानवता सिसक रही है।
कुछ स्वार्थी
नर भक्षी दरिन्दे
स्वयं
उन कमरों की
पहरेदारी कर रहे हैं।
बाहर
खुली सड़कों पर
देश भक्तों की
लाशें–बिछा दी गई हैं:-
नुमाइश के लिए।
यह ?

उसका भाई है।
यह ?
इसका पति है
यह ?
उस बूढ़े की आखिरी निशानी है।
पानी तो नहीं मिलता
लेकिन
खून की नदियां
अवश्य बह रही हैं।
ऐ नरभक्षो दरिन्दे !
तुम्हारी भूख
अभी मिटी नहीं ?
तुम्हारी प्यास अभी
बुझी नहीं ?
तो इन लाशों को सड़ने मत दो
मसाले भरो इनमें
(इजिप्ट की ममियों की तरह)
और सजा दो
अपने खूबसूरत ड्राइंगरूमों में
ताकि
आने वाली पीढ़ियां
तुम्हारे इस अजीबोग़रीब
शौक की सराहना तो कर सकें
तुम पर
नाज़ तो कर सकें।

तुम्हारा अपराध

—ओम केवलिया

यह था तुम्हारा अपराध
कि तुमने
बहती गंगा में हाथ नहीं धोए
और न ही
साहिल पर लाकर
किसी के सफीने डुबोए।
सब्ज़ बाग़ दिखाए होते
दिन होते हुए भी
तारे गिनाए होते
लेकिन तुम
चमचा न बन पाए
जो समय की मांग थी
तुम्हारी अक्ल ने
खाई भाग थी
तुम बने वह कांटा
जो
आंखों में खटक जाए।

●

दुःख

—मीठालाल

मैंने दुःख को नजदीक से
देखा है,
पहचाना है,
सहलाया है,
और अब सदैव
मैं ऐसा ही करता हूँ
क्योंकि—
दर्द के पैवद
बांध लेने के पश्चात्
जो सुख का अनुभव होगा,
बेहद अच्छा होगा
इसी विचार से
दुःख-दर्द के धुंधलके में,
भटकता-फिरता हूँ मैं।

सुबह से शाम तक

—मीठालाल खत्री

निशान्त ....
रोटी की तलाश मे निकलती हैं
मेहनतकश पीढ़ियाँ
सूरज की चिलचिलाती धूप में
सड़कों पर चलते-चलते
भुर्रियों से भरे चेहरों पर
चुहचुहा आती हैं पसीने की बूंदें
और गर्मी के दिनों में
कोलतार की सड़कों पर
नंगे पांवों के तले चिपचिपाहट होती है
और मजदूर-टोलियां
बिना थके सड़कों की चिपचिपाहट
सिर्फ पेट के लिए सहती हैं
और शाम होते
लौट आती हैं अपने-अपने बसेरों पर
टटोलती हैं फटी-पुरानी कमीजों की जेबें—
जो कुछ मिलता है दिन भर भटकने के बावजूद
उसी में अपना काम चलाती हैं
और कल होने की प्रतीक्षा में
मूंज की टूटी खटिया पर (या यह भी नहीं है)
करवटें बदलती रहती हैं
और फिर सवेरे वही क्रम......

●

मौत की बाहों में

—वेद शर्मा

अस्पताल का एक कमरा
बिस्तर पर पड़ा एक शरीर
बेहोश, शून्य की ओर अपलक देखता हुआ
जूझ रहा था जिन्दगी के लिए
चेतना लुप्त, एक–दो–दस दिन तक
यह सब कुछ था नया देने को
समर्पण के प्रतिफल हेतु
यौवन का विकास, फूल सा खिला चेहरा
सब कुछ शान्त, अविचल
समर्पण का परिणाम
जिन्दगी मौत या मौत जिन्दगी
सब कुछ वही है, वैसा ही
उसका सदन कुछ दिनों के लिए
पुकार, आहों से भरा रहा,
किसी के यहां सूनापन था
आज भी है और रहेगा
वातायन खुले थे, द्वार खुले थे
शायद उसके वापिस आने की इन्तजारी में
पर 'वह' कितना ही इन्तजार करे
नहीं लौटेगा, कभी नहीं
जो सब कुछ दे चुका अन्तिम सांस तक

●

संध्या के झुटपुटे में

—वेद शर्मा

संध्या के झुटपुटे में
छत पर खड़ा–एक प्राणी
शान्त, क्लान्त, अस्थिर
शून्य में एकटक ढूंढ रहा है
जीवन का सत्य
सूनापन, नियति का क्रूर प्रहार
कुछ घंटों पहले ही
उसका एक अन्तरंग
चला गया, चिर यात्रा के पथ पर
कभी कभी उसकी दृष्टि
उस सूने कमरे की ओर घूम जाती है
हर चीज के सूनेपन से टकराकर—
लौट जाती है
हृदय का खोखलापन, विरह का—
व्याप्त ज्वार
उसे वापिस शून्य में दृष्टि ले जाने
को बाध्य करता है
और वह देख रहा है उस चिर यात्रा को
सत्य वर्तमान है या भूत है
'वह' कष्ट भोग रहा है, भोगना होगा भी
यह क्रम, जीवन की प्रक्रिया और उसका अवसान

●

क्षण-बोध

—सावित्री परमार

दिन की पटरी पर
शिक्षा का दफ्तर खुल जाता है
फुर्सत की दरी पर
उछलने लगती हैं
शब्दों की कौड़ियां
चुगलियों की तश्तरी में
निगली जाती है साथियों की खुशियां
खाली की जाती हैं कैण्टीनें

काटी जाती हैं औरों की जेबें
कागज़ों पर फिसलती हैं योजनाएं
महज कुछ फार्मूले
शराफत की नुकीली मुस्कानें
अपने परिवर्तित मुखौटों पर टाइप कर
चलते हैं अमलदारी दौर
उड़ते हैं कहकहे
चटकती हैं उंगलियां
बनते हैं मीनू
सरकती चुस्कियां
शेष क्षणों में भविष्य के होनहारों के लिये
तर्कहीन पासों पर
उछाली जाती है बेमानी गोटियां
दिमागी ट्राली पर लादने के लिये
हर रोज छपते हैं नए-नए पृष्ठ
स्वार्थी हस्ताक्षरों में टंकित होते हैं परिचय पत्र
जिन्हें ज्ञान की खुरदरी जिल्द में बांध कर
सजा दिया जाता है शो केसों में
अनुभव हीन चश्मों में, और—
लटका दी जाती हैं
परीक्षाओं के गले में
लक्ष्यहीन यात्रा की
गलत दिशा सूचक तख्तियां

●

मौन आर्त्तनाद

—सावित्री परमार

लगड़ाता हुआ विवेक
दबे पांव आता है और –
वक्त की ताम्रवर्णी हथेली पर
खींच देता है भविष्य की
कुछ स्वीकृत रेखाएँ
तभी सूरज की सिर चढ़ी
जंगली-वहशी धूप आती है और–
सुखा देती है सभी रेखाएँ
ज्यॉमेट्री के सभी फार्मूले और–
अर्थहीन क्षणों के ढलवां पत्तों पर
लिख जाती है
नई संज्ञाएँ
नई विधाएँ
कल की नई योजनाएँ
बूढ़ा पॉमेस्टियन विवेक
रह जाता है सिर धुन कर
कल के आत्मघाती दिन पर।

●

मौन आर्त्तनाद

—सावित्री परमार

लगड़ाता हुआ विवेक
दबे पांव आता है और –
वक्त की ताम्रवर्णी हथेली पर
खींच देता है भविष्य की
कुछ स्वीकृत रेखाएं
तभी सूरज की सिर चढ़ी
जंगली-वहशी धूप आती है और–
सुखा देती है सभी रेखाएँ
ज्यामेट्री के सभी फार्मूले और–
अर्थहीन क्षणों के ढलवां पत्तों पर
लिख जाती है
नई संज्ञाएँ
नई विधाएँ
कल की नई योजनाएँ
बूढ़ा पॉमेस्टियन विवेक
रह जाता है सिर धुन
कल के आत्मघाती

भाव मूल्यांकन

—सावित्री परमार

सूनी आँखों के दृश्य
बड़ी सफाई से सजा रखना
उतना ही बड़ा अपराध है
जितना रोशनी में भटकना
अथवा—
किनारे पर बैठकर
डूबते हुए को
मौन दर्शक बन देखना
या—
पड़ोसी के घर
आग लगने पर
सहायता करने के स्थान पर
अपनी खिड़की से
उन सारे शब्दों को
कोरी सहानुभूति दर्शाना

●

वरामदों का हर बोर्ड अंकित है फ्रॉयड की थ्योरी से
अथवा हड़ताली बोलों से
पाठों की उपलब्धि रह गई है बस
धुने हुए शब्दों की मशीनगन तक या—
मात्र भाषणों के बीमार शौक तक
छात्र सलग्न नजर आते है
सभ्यता के किले को गिराकर
फैशन की इमारत गढ़ने में तत्पर
जहा फुर्सत के घण्टों मे
संस्कृति को मुट्ठी मे कैद कर
अनैतिकता की तंग-ढीली पोशाकों में कस कर
कालिदास और तुलसी की कविताओ पर
पैरौडी गाकर, मिर्गी के दौरे सा नर्तन करते है
मर्यादा के फर्श को उधेड़ कर
अराजकता के टाइल्स सजाते हैं
शिक्षक खो बैठा है अपनी गरिमा की शक्ति को
न जाने किस भूलभुलैया के चक्रवात मे कि—
छोटो को बड़े-बड़े सम्बोधन देता नजर आता है
और नजर आता है एक पीड़ित व्यथा से
तिलमिलाता हुआ तब, जब—
श्रद्धा के उपनाम उसे ऐसा नश्तर दे डालते हैं जैसे—
कोई जेबकतरा चुपचाप
मेहनत को कमाई साफ करदे—
यो सभी कुछ बदला-बदला सा लगता है
व्यर्थ और बदनाम सा

●

मात्र मूल्यांकन

-सावित्री परमार

खुली आंखो के दृश्य
बडी सफाई से नकारना
उतना ही बड़ा अपराध है
जितना रोशनी में भटकना
अथवा—
किनारे पर बैठकर
डूबते हुए को
मौन दर्शक बन देखना
या—
पड़ोसी के घर
आग लगने पर
सहायता करने के स्थान पर
अपनी खिडकी से
जग खाये शब्दो की
थोथी सहानुभूति उछालना

●

कुछ टएडे आयाम

—सावित्री परमार

नयेपन की जुगाली करते-करते
अर्थहीन अनुभूतियों की गर्मी से
मटमैले बेस्वाद प्रवचनों से
कर दिया है हमने खारा विश्वास और
आने वाले कल को सौंप दी है जिन्दगी
हाशियों में काटकर
जो लिखेगी बैठकर कटी सतरों का खोखला इतिहास
हम आजकल
हो गये हैं बहुत बड़े आलोचक
औरों की बात तो छोड़िये
मगर जब कभी भी
आपस में मिल बैठते हैं तब—
नेह आदान-प्रदान करने की जगह
सबसे पहले करते हैं एक दूसरे का पोस्टमार्टम
कुछ अनगढ़ फूहड़ हाथों ने
साफ सुन्दर, भौंडे-असुन्दर
सभी चित्रों को, सभी दृश्यों को
बड़ी लापरवाही से
रद्दी में बंधी फाइलों की तरह कर दिया है गड्डमड्ड

परम्परा की गिरफ्त

—सांवर दईया

हाँ ऽऽ, यह दुर्भाग्य ही है
कि हम
जो श्रादमी बनने वाले थे
श्रादमी नही
बैल बन गये
या बना दिये गये !

प्रतिबन्ध लगा दिया गया
हमारी स्वतंत्रता पर
कि हम
कही भटकें नही
श्रौर
चलते रहें....चलते रहें

सिर्फ च-ल-ते-रहें
परम्परागत रास्तों पर
चुपचाप . आंखें बन्द किये । !
हमारा चिन्तन कुंठित हो गया
हमारे मस्तिष्क पर
लाद दिया गया
एक पूर्व निर्मित मस्तिष्क !
हमारी धुंधली दृष्टि पर
परम्परागत चश्मा लगा दिया गया
हमारे हाथों में दी गयी
परम्परा की छेनियां
और हमें भी शामिल कर लिया गया
हत्यारों में !
आसपास
उभरते नये स्वर
नये रास्ते तलाशते पैर
नयी दिशाएं ढूंढती आंखें
कुछ नया सोचते मस्तिष्क
कुछ आगे बढ़ते हाथ
सबके सब काट दिये गये
परम्परा की छेनियों से !
और
आने वाली पूरी पीढ़ी
बैल बना दी गयी
[इन सबको आदमी बनना था !]

रक्त-रहस्य

—सांवर दईया

मेरा खून लाल नही
सफेद है....बिल्कुल सफेद !
मैंने बचपन मे मा का खून नही
सिर्फ दूध पिया था
[डिब्बे का दूध !]
शायद इसीलिए
मेरा खून लाल नही
सफेद है .. बिल्कुल सफेद !

युवावस्था मे मैंने हवा खायी, पानी पिया
जोंक बन किसी के चिपका नही
[सुना है, जोंक खून पीती है]
शायद इसीलिए
मेरा खून लाल नही
सफेद है...बिल्कुल सफेद !

वृद्धावस्था तक मैं टूट गया.... बिखर गया
समझौते की नही सोची
[सुना है, समझौता पौष्टिक औषधि है !]
शायद इसीलिए
मेरा खून लाल नही
सफेद है....बिल्कुल सफेद !

●

भौगोलिक परिभाषाएँ : नये परिवेश में

—अमरसिंह पाण्डेय

हम सब नदी के द्वीप हैं,
जो
मनु और श्रद्धा से
आदम और हव्वा से
एक दूसरे से जुड़े हैं
किन्तु
स्वार्थों का सतत आन्दोलित जल
उन संघर्षों को काट रहा है।
'अहं' के बढ़े प्रायद्वीप
'प्रसाद' की याद दिलाते हैं,
अपने में भर सब कुछ कैसे
'व्यक्ति विकास करेगा ?

यह एकान्त स्वार्थ भीषण है,
अपना नाश करेगा।'
हार्दिक उदारता के महाद्वीप
स्वार्थों के महासागरों के मुकाबले
बस चौथाई रह गये है।
बहना अब बद है
'बद' और 'घरावो' के जोहड़
जीवन मे सड़न पैदा कर रहे हैं।
रागात्मकता के थलडमरुमध्य
दो स्वार्थों को जोडने वाले
जलडमरुमध्य की तुलना में
सिकुड़ते जा रहे हैं।
भौतिकता के मरुस्थल
इस कदर बढ रहे हैं
कि,
आध्यात्मिकता के शाद्वल
मृग-मरीचिका ही बन गये हैं
मानवता के शिखरो से
सहानुभूति की सरिता का
उद्गम अब बद हो गया है
करुणा के निर्झर
प्रेम के प्रपात
अब नहीं बहते
इसलिए जीवन के मैदान
वन्ध्य और ऊसर हो गये हैं।
नव-नव वर्गों के डेल्टा
नित्य प्रति बढ़ रहे हैं,
इसलिए सच्चे अर्थों मे

संस्कृतियां के संगम
अब नही हो पाते।
आन्दोलनों के ज्वार भाटे
चढ़ते-उतरते रहते हैं
अत. मर्यादाओं के किनारे
निरंतर टूट रहे हैं;
और
प्रदर्शनों की पूर्णिमा
हड़तालों की अमावस्या
जब जब आती हैं
उत्पादन को ग्रहण लग जाता है।
आस्था की फसलें अब नहीं उगती
क्योंकि
विश्वास का सूखा पड़ रहा है,
'नारों' और 'जयो' के तूफान
सन सना रहे हैं,
व्यक्तित्व के शिखरों से
अर्थलिप्सा के हिमपात के कारण
कर्तव्य की घाटियां बद हो गयी हैं
जनतंत्र के आसमान पर
अवसरवादिता का धुंध छा गया है
अतः
सत्य निष्ठा का सूर्य धुंधला गया है।

●

मुर्दे को मौत का भय

—जगदीश उज्ज

आदमी
एक ही दिन में
कई-कई बार मरता है
अपने को बचाने के लिए
भविष्य बनाने के लिए
उसकी लाश—
दौड़ती है सड़कों पर,
सड़ती है—होटलों में
सजाई जाती है दुकानों में,
बंद करदी जाती है कार्यालयों में
उस पर लदा है—बोझ
अनतोला—
दायित्व का
लाश !
फिर भी लालसा है
जीने की
स्थायित्व की
मुर्दे को मौत का भय
पग फूंक फूंक कर रखता है
आदमी एक ही—दिन में
कई-कई बार मरता है—

●

संस्कृतियों के संगम
अब नही हो पाते।
आन्दोलनों के ज्वार भाटे
चढ़ते-उतरते रहते हैं
अत. मर्यादाओं के किनारे
निरंतर टूट रहे हैं;
और
प्रदर्शनों की पूर्णिमा
हड़तालों की अमावस्या
जब जब आती है
उत्पादन को ग्रहण लग जाता है।
आस्था की फसलें अब नहीं उगती
क्योंकि
विश्वास का सूखा पड़ रहा है,
'नारों' और 'जयों' के तूफान
सन सना रहे हैं,
व्यक्तित्व के शिखरों से
अर्थलिप्सा के हिमपात के कारण
कर्तव्य की घाटियां बंद हो गयी है
जनतंत्र के आसमान पर
अवसरवादिता का धुंध छा गया है
अतः
सत्य निष्ठा का सूर्य धुंधला गया है।

●

मुर्दे को मौत का भय

—जगदीश उज्ज्वल

आदमी
एक ही दिन में
कई-कई बार मरता है
अपने को बचाने के लिए
भविष्य बनाने के लिए
उसकी लाश—
दौड़ती है सड़को पर,
सड़ती है—होटलों मे
सजाई जाती है दुकानो में,
बंद करदी जाती है कार्यालयों में
उस पर लदा है—बोझ
अनतोला—
दायित्व का
लाश !
फिर भी लालसा है
जीने की
स्थायित्व की
मुर्दे को मौत का भय
पग फूंक फूंक कर रखता है
आदमी एक ही—दिन में
कई-कई बार मरता है—

हम विवश हैं

—जगदीश उज्ज्वल

यंत्रणाएं—
भोगते है—
हम
अनायास नही
अहम् के पोषण में
जान बूझ कर करते हैं अकृत्य
किन्तु विवश हैं
अनचाही भूमिका निबाहने को
पर्दे के पीछे होता नही शोर
फिर भी
नेपथ्य का दर्द
हमारे चेहरे से-पिघल पिघल कर
स्टेज पर बहता है
—यह कुछ भी नही
आदमी का जीने
और
प्राप्त करने का
निष्फल प्रयास
आदमी बनने का ढोग
काश ! हम आदमी बन पाते
यंत्रणाएं भोग कर भी।

●

आस्था का जन्म

—जगदीश उज्ज्वल

दीवारों को सहते-सहते
अब हम
सड़कों को जीने का
उल्लास लिये
एक दूसरे के चेहरों पर-छाई दहशत को
चौराहे पर उगा देते हैं
अस्थियां हमारी वज्र बन सकती है
फिर रक्त और मांस–अविरल बहता सांस
युग विष को पचाने की पूरी पूरी साध
क्यों नहीं—
अनास्था की चाल-रोक दें
कुंठाओं की ढाल-छोड़ दें
घुटन का कवच-तोड़ दें
पगडण्डी पर उगी घास
बाधाओं का आभास
क्या अब भी हम वही है ?
जो बाधाओं से घबराकर
दिशाएं अपनी मोड़ दे।

●

प्रवाह

—जगदीश उ

मानवीय मूल्यों के
कटते कगारों पर–सायास
फिसल रही है शहरी संवेदनाएँ
चौराहों पर
लोक नृत्य का नवीनतम संस्करण
सर्वाधिकार सुरक्षित करा रही है
ग्राम्य जीवन की आत्म विज्ञप्तियाँ
नयी सभ्यता के तटवर्ती ताड़
लम्बे
और
लम्बे होते जारहे हैं
और बटोर रहे हैं प्रहार शक्ति
(तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग)
संघर्षों की फसल के नीचे
दब गई है हमारी जूझने की त्वरा
सम्बन्धों की दरार बढ़ रही है
हमारे टूटने की गति से
और लगता है
हम अनायास जुड़ते जा रहे हैं
नवीनतम हर उपलब्धियों से।

●

विभाजक-चक्र

—विमला भटनागर

टेबिल पर बिछे
मोटे-ग्लास में से
फाइलों के नम्बर
व समय विभाजक-चक्र
के अक्षर उभर आये;
मैं,
कुछ देर तक
इन उभरे अक्षरों को देखती रही,
टेबिल की हर चीज पर निगाह घुमाई,
वहाँ की हर चीज कैद नजर आई;
होल्डर मे लगी निबें,
लाल स्याही को
ढकी दवात में गिरी
एक दो मक्खियाँ,
पेपरवेट मे छटपटाती मछली,

काँच की चार दीवारी से घिरा हुआ
स्पज का टुकड़ा,
लोहे के स्टेण्ड में बिधे तारीखों के पुर्जे,
फाइल कवर में बंद तकदीरें,
समय विभाजक के
चार खानों में बंद
जीवित नाम–
-सब कैद।
मैंने मेज से
अपनी आंखें हटा लीं,
अपने अन्दर झाँका,
मुझे लगा हर सांस
इन्हीं दो शक्तिशाली
अक्षरों से घिरी है।
और प्रत्येक वस्तु को
चारों ओर से
घेरे हुए ये दो
अक्षर,
मेरे दिमाग में उभर उठे,
मैं
टेबिल से उठ कर
खिड़की पर आ खड़ी हुई
और, मैंने
एक गहरी सांस को
इस कैद से मुक्त कर दिया।

स्याह साये : यादें

—विमला भटना

आज
मैंने अपने कमरे के
उस ताले को
खोला है,
जो वर्षों से
बंद था ;
दरवाज़ा खुलते ही
एक घुटन भरी
हवा बाहर की ओर
लपकी,

और
आत्मा को कंपकपा गई।
विगत के स्याह साये से उठी
ये यादें
ट्यूब लाइट सी
झिलमिला उठीं।
कमरे में टंगी
उस बड़ी
तस्वीर पर
धूल की परतों
को मैंने अपने आंचल से
पोंछ देना चाहा
लेकिन
सुनते हुए
दरवाजे के
बीच, पड़ती
धुन्ध बरदाश्त
नहीं हुई।
मुझे लगा
कहीं यह मुझे, मुझ से अलग न करदे
इसलिये
मैंने अपने को बचाया,
और वह ताला
कमरे के दरवाजे पर फिर
एक बार बन्द कर दिया।

●

विद्रुत समय

—अर्जुन

हर काले चेहरे वाला आदमी
अपने चेहरे पर
पाउडर की सफेद पर्तों को
गहरा करना चाहता है ;
हर मूर्ख कुर्सी से चिपकना चाहता है ;
उजले चेहरों पर
शोषण के फोड़े निकल आये हैं
जिनकी मवाद रिस-रिस कर
मानवीय वस्त्रों को गीला कर रही है
उदारता पर हवाई हमलों की बौछार चल रही है
ठेला ढोते मजदूर के जिस्म पर
भूख बेकारी और दरिद्रता के ट्रैफिक दौड़ रहे हैं
सड़ी गली परम्पराओं के महलों पर
हर वर्ष की तरह
रंग चढ़ा दिया गया है
और इंसानियत का कारवाँ
दबे, कुचले यथार्थों को कब्र में दफनाता चल रहा है
सच्चाई का सूरज
बेरहमी संध्या के साथ ढल रहा है
आदमी महसूस करता है—
संकट का एक और क्षण टल रहा है

●

मूक हूँ

—मनजल कांकरोली

रास्ते में हर मोड़ पर, हर चौराहे पर,
पान की दुकान पर या होटलों पर,
जो भी मिलते हैं,
कहते हैं,
भाई कोई कविता सुनाओ,
उसी अन्दाज और लहजे में
जैसे पान खिलाओ, चाय पिलाओ।
और मैं सोचता हूँ –
मेरी कविता गज़ल नहीं
जिसे सुन वह दाद देंगे,
कोई श्रृंगार रस का गीत नहीं
जिसे सुन रस मे डोलेंगे
मेरी कविता तो,
लाखों गरीबों के फटे चिथड़े हैं
जिसे सुन ठंड से सुकुड़ेंगे।
मजदूरों के पसीने की बदबू है,
जिसे सुन नाक सिकोड़ेंगे।
मेरे कई दोस्तों की सूखी रोटी है –
जिसे चबा नहीं पायेंगे
और भी कई कटु सत्य हैं –
जिसे सुन मुझे गालियां देंगे,
इसीलिये, चुप हूँ, चुप हूँ, चुप हूँ .... ॥

●

—हरगोविन्द गुप्त

हम भूतकाल में जीने के आदी हैं
झांकते हैं अपने ही मन के अन्तराल में,
ऊबड़ खाबड़ गह्वरों में ।
सिर धुनना, अतीत पर रोना,
जो गुजर गया है, इतिहास बन गया है
आदत है उस पर पछताना ।
या फिर,
झांकते है अनागत के गहन तिमिर मे
कल्पना के बुनने ताने-बाने
प्रतिक्षण, प्रतिपल बनाने, मिटाने, फिर बनाने ।
यही जीवन क्रम चलता रहता है
खाते हिचकोले, कभी पचम, कभी मध्यम !
किन्तु, वर्तमान !
जर्जरित मन
थका थका यह गात
न हलचल, न स्पन्दन ।
गहन तिमिर मे कुदरत अनजाने खोए है हम
गत्वरत, सूनी सूनी निगाहें ।
टीस भरा दिल, सर्द आहें ।
कैसी है हमारी नियति !
गत की अतृप्ति,
अनागत की सुरति,
वर्तमान से विरति ।
सुनो, बीसवी सदी मे मानव है हम ।

●

बूढ़ी पीढ़ी

—कु. सत्यभामा शर्मा 'अनु'

एकदम फूंकने योग्य
बूढ़ी पीढ़ी।
आरोपों की प्रवृत्ति
क्रोध का अधिकार
भोजन,
व इतना बड़ा करने का अहसान।
जैसे हमें
अपने उपकारों का कोटा
पूरा करने के लिये ही
पैदा किया था।

ठूंठ बुजुर्गियत अब कहती है
तुम, विद्रोही हो, उद्दंड हो, उच्छृंखल हो।
"ठीक।"
"बहुत सुन्दर"
पर भाग्यवान हो तुम,
तुम्हारे अज्ञानमय मानस में भी
चेतना के अंकुर उगे हैं।
बढ़ें हैं, बढ़ रहे हैं
क्योंकि
विद्रोह का अर्थ यही है
तुम्हीं ने भावार्थ बताया है
कि, जब हद से ज्यादा गला घोंटा जावे
सब बात भी करने न सोचने दी जावे
तब
पराधिक निष्ठुरता से
या
परवशता से ही विद्रोह उठता है
यही विद्रोह का बीज है।
माना न तुमने ?
हां,
तुम अपनी धरती आस सूंघे।
यही कहना था
कि पानी पर तुम्हें
हक नहीं है।

वर्फ की सिल्लियों का भारीपन

—भँवरसिंह सहवाल
'व्याघ्रपज्जा'

मेरी हसरतों को
सरे श्राम नंगा करके
फांसी पर चढ़ा दिया गया !
मेरा विक्षोभ जलता रहा,
श्राक्रोश मचलता रहा,
श्रीर वर्फ की सिल्लियों का भारीपन
सीने पर लगातार बिछता, इठलाता रहा !
जिन्दा उतारी हुई चमड़ी से
निर्जीव शरीर को
फिर से वढ़ा दिया गया !

●

मुक्ति का उपहार

अब यही सच है। —करणीदान बारहठ

अब यही सच है
कि हमने आश्वासनों से जिन्दा रहना सीख लिया है।
अब तुम मेरी लाश मत दफनाओ
देखो, यह भी जिन्दा हो सकती है
क्योंकि
हमने लाश को जिन्दा करना भी सीख लिया है।
मेरी आशाओं को हर बार धोखा दिया गया है
मैं जानता हूँ कि
ऐसा ही होता रहेगा।
तुम इसके लिए नारे मत लगाना

[प्रस्

ग्रौर ऐसे पागलों के लिए
कोई पागलखाना नही ।
ज्यादा बकवास करोगे तो
कोई याह्याखां ग्रा टपकेगा
ग्रौर तुम-मुजीब को रगड़ कर फेक देगा ।
ग्रब यही सच है
कि तुम हाँ मे हाँ मिलाग्रो ।
ग्रौर ऐश करो ।
राणा प्रताप बन गए तो
ग्राज घास की रोटी भी नसीब नही ।
मानसिंह बनो ग्रौर मौज करो ।
ग्राग्रो, उस खेमे मे चलें
जिससे तुम ग्रब तक नफरत करते थे,
ग्रपना पुराना चोला निकाल लो,
यही चलेगा ।
वहाँ सड़ाध है,
लेकिन नाक बद मत करना
नही तो लोग तुम्हे पराया मानेगे ।
बदबू को ग्रपने चारो ग्रोर लपेट लेना
सच कहता हूँ, चार दिन बाद ही
वह सुगन्ध मे बदलेगी ।
लोग तुम्हारे पीछे होंगे
क्योकि लोग इसी गदगी की तलाश में रहते हैं ।
तुम झूठ मत मानो,
ग्रब यही सच है ।

●

प्रश्न चिन्ह हूँ ।

—प्रेमचन्द 'कुलीन'

मैं किसी भी एक संज्ञा से प्रतिबद्ध,
मानव हूँ या नही ?
या फिर केवल, प्रश्न चिन्ह हूँ ।
न जाने कब से सम्बोधन है भूख,
ज्ञान की प्यास,
अपनत्व की लालसा,
और वासना का बढता हुआ,
सुरसा सा विस्तार ।
न मै कोई मायावी,
न किसी युग का रामदूत ।
फिर क्यो है ?
मेरे इन कमजोर कधो पर,
यह अमोल गुरुत्व भार ।
"नही–नही,"
क्षमा करो मेरे आत्म ईश ।
मुझे किसी भो साधारण वर्ग का
रहने दो साधारण इन्सान ।
यही क्या कम है मेरे भगवान
कि काल के धरातल पर,
खड़ा रह कर भी, मै रह सकूँ—
एक साधारण "इ···न्सा···न ।

भटक गया है मन

—प्रेमचन्द 'कुलीन'

निर्माण के गीतों को दोहरा कर,
युग की दहलीज पर शिला खण्ड रोपूँगा।
अतीत की गहराइयों मे डूब कर—
अमृत घट खोजूँगा।
किन्तु परिवेश के आघात ने
कर दिया खण्डित मेरा यह संकल्प
और अब अपलक देख रहा हूँ रूप इसका।
मौन का है प्रश्न चिन्ह,
"अपराध किसका ?"
अतीत की कन्दराओं मे
भटक गया है मन !
पराजित पावों ने,
चुका दिया सावन।
और शाम के अंधेरे में,
मात्र केवल सुनता हूँ अब,
स्वास मेघों की घर ऽऽ घरऽऽऽ.........।

●

स्थिति : समाधान

–प्रेमचन्द 'कुल

अनजानी पग डडियाँ
सांझ की उदासी में डूबी है वहाँ।
स्थितियों के सागर पर,
असह्य तपन ही मिली है जहाँ।
मकड़ी के जाल में धँसे,
क्षुधा से पीड़ित, तपन से विकल,
अभावो से कंपित जकड़ गये हैं पाँव।
छटपटा कर जहां कितने चुके
लड़खड़ाते, दम घुटाते वे पथिक;
किन्तु रे मन !
मिल नहीं पाई उन्हे, अब तलक वह छांव।
जिन्दगी का दीप यों बुझता रहा वहां।
असह्य तपन ही मिलती रही यहाँ
दोष भी दे तो किसे दे ?
पांव उसके ही हुए हों तो पराजित;
क्योंकि उसने आज तक इस भीड़ में,
बहारो की फुहारों का लुत्फ ही लिया है।
आधुनिक इस ज्योति में भूल कर उद्यम
पुरुषार्थ को गमगीन भी उसने किया है।
जब कि केवल मात्र यह सब—
अक्ल पीछे लट्ठ लेकर बोझ ही हुआ।
नेत्र हीन इन्सान का पुलाव ही हुआ।
फिर चकित हों क्यों सभी हम ?
बोझ से तो टूटती है ही कमर।
मद प्रफुल्लित हाथ यों दर्पण लिए,

चुकाने जायेंगे सारी उमर।
क्योंकि दर्शन का उपयोग तो—
आंखो मे होना है।
छांव का निर्माण भी
बीजों (कर्म) मे होना है।

●

दो मिनी कविताएँ

—प्रेमचन्द 'कुलीन'

एक

तलाश है
कभी न सूखने वाली,
झील की गहराई की।
इससे बड़ा प्रमाण क्या देगी आत्मा?
जब किसी सन्नाटे की
खिची हुई रेखा के सामने,
हर शहादत झूँठी होगी।
गलत शब्दो मे लिखी स्याही की।

दो

अस्तित्व तो है,
(भीडका)
महत्व भी है।
बशर्ते,
भीड न कहे अपने मुंह से,
और न महसूस होने दे,
स्वयं की सत्ता।

●

विसर्जित हुआ दुःख

—जनक राज पारीक

भूख और भय को एक लय में गाकर
मैंने पेट से क्षमा मांगी,
दर्द और दुआ को एक साथ पाकर
मैं एकाएक डर गया
लगा
जैसे अन्दर ही अन्दर
कुछ अन्तिम बार हिला
और मर गया !
फूला, फला और सूख गया
अहसास की आंधी मे
फिर इस तरह गिर गया
वह सपनों का पेड़
जैसे अकाल मे मरा हुआ साँप
या सर्दी में मरी हुई भेड़ !
शेष बच रही है एक पथराई आस
बेमाने खुश और बेमतलब उदास !
यह ठीक ही हुआ
यह सब ठीक ही हुआ
जो सांसो का साथ आज सपनो से छूटा
दृष्टि का सृष्टि से
एक गलत रिश्ता तो टूटा !

●

आज वसन्त को चेतावनी

—जनक राज पारीक

उत्सव है
आज कोई उत्सव है !
आज बड़ी चुप्पी है इस माहोल मे !!
नटखट हवाएँ नजर कैद हैं
शान्त बैठे हैं दार्शनिक गिद्ध,
बड़े अनुशासित ढंग से जल रहे हैं खेत !
सूखी हुई फसलों मे पके पके वादे,
झरनो के आस पास जलते इरादे !
आज बड़ी निस्तब्धता है इस तपोवन मे !!
धरती के जंग लगे होठो पर
तड़प रही है आज एक सहमी सी तान
बज रहे है लगातार
मातमी धुनों पर—मौन मांगलिक गान !
आज बड़ा सूनापन है इस निर्जन में !!
अत. क्षमा करना ऋतुराज,
दूर से ही क्षमा करना इस बियावान को
जिसने पीने को प्यास
और खाने को सूखी घास परोस रखी है !
सभल कर आना इस व्यवस्था मे,
तुम्हारे स्वागतार्थ पलक पावड़े बिछाए बैठे हैं -
झाड़ झंखाड़
और अगवानी मे
खर्राटे भर रहा है एक बर्बर उजाड़ !

O

एक नजरबन्द अहसास

—जनक राज पारीक

अन्तिम बार जब मैंने आपको देखा
तब मैं एक साधारण नस्ल का आदमी था !
मेरा शरीर मेरे माहौल में कैद था,
इर्द-गिर्द की हवाएं मेरे जिस्म से लिपट रही थी
और मेरे अन्दर कुछ चेतना तब भी मौजूद थी !
अपने आप को इस तरह देखने पर
मैं लज्जित भी था
और भयभीत भी
लेकिन वह एक जरूरत थी,
अपने जिस्म के प्रति लगाव था, श्रद्धा थी, भक्ति थी
एक कदम के बाद
दूसरा कदम उठाने वाली

थोड़ी सी बची-खुची शक्ति थी !
एक उन्माद मुझ पर हावी था,
एक तेज नशा
मेरी नस नाड़ियों पर छा रहा था
और मैं अपने आपसे बहुत दूर जाना चाहता था !
मैं अपने इरादे पर बहुत खुश था
मुझे बहुत तसल्ली हो रही थी
दरअसल, उस समय
भूख और भय से पीड़ित
बहुत सारी उक्तियां
मेरे अन्दर सो रही थी
और मैं उन्हें जगाना नहीं चाहता था !
इससे पहले
कि कुछ विशेष परिवर्तन होता
मैं वहां से चल दिया !
अपने आपको
बहुत पीछे, एक गलत जगह पर छोड़कर
मैंने भूख और बेबसी का
एक महत्वपूर्ण राग गाया
और उदास हो गया !
हाय,
अपने आपसे बहुत दूर जाकर
फिर से
मैं अपने ही पास हो गया !

●

क्षोभ

—ब्रजभूषण भट्ट

जब मुझे –
इस बात का पता लगा
कि –
एक किसान
बाबू हो गया है ;
तो मुझे लगा
कि –
एक भारतीय खो गया है !

हम तक

ऊँची ऊँची चिमनियों से
निकल रहा है,
धुँआ ;
जैसे –
इस शहर के जन-समूह से,
दबी आहे
दबी हूकें
उठ-उठ उभर-उभर कर
आरही हों हम तक।

लफ़्ज़ों के गुलाब

—मुख्तार टोंकी

जिन की बातो में ज़हर है
जिन की आँखों में ज़हर
क्रिया कलापों मे ज़हर
और श्वासों में ज़हर
जिन के विचारो में है विष
और दिमागो मे ज़हर
सस्कारों मे ज़हर
और रिवाजों मे ज़हर
जिन की हर सुबह ज़हर है
जिन की रातो मे जहर
जिन की बातो मे जहर
ज़हर ! सब ओर ज़हर
इस छोर से उस छोर ज़हर
फिरकापरस्ती का जहर
तंग नजरी का जहर
ज़हर ऐसा कि नही जिस का इलाज
काश ! तडपा दे उन्हे
मेरे नज्मों की जलन
मेरे गीतों की तड़प
काश ! महका दे उन्ही ज़हनों को
मेरे लफ्ज़ों के गुलाब
खून से सींचे हुये
मेरे लफ्जों के गुलाब ....

सरहद का निगहवाँ

—वन्शी बावर

ये मेरा देश, मेरा मुल्क, मेरी जन्नत है,
ये मेरे ख्वाब की तावीर मेरी तुरबत है,
जिगर के खून से सीचा हुवा गुलशन,
इसी की गोद मे खेला था मेरा बचपन है,

दिलो मे आग सी भरती है, हरेक शय इसकी,
वतन के नाम पे जलती है, जवाँ कलियाँ इसकी,
इसकी बेटी, बहन सरहद के सिपाही की,
ये मेरा तन है, मेरा मन है, मेरा दरपन है,

इसी की गोद मे पलते है करोड़ों मोमिन,
इसी की गोद में बढता है ईसाई जीवन,
इसी मे सिख है, हिन्दू का ये शैदाई,*
वतन की ग्रान के रहते है हमेशां, काइल,

मजाल क्या है जो नजरे भी उठादे इस पर,
ये कोई कर नही सकता है मेरे मन्दिर पर,
मेरी मस्जिद में कभी बूए नफरत नही ग्रा सकती,
मेरा भगवान है, महबूब मेरा ग्रन्त है,

ये मेरे ख्वाब की तावीर मेरी मस्ती है,
ये मेरा जाम है, मय घर है, मेरा साकी है,
इसकी हर चीज की कीमत ग्रभी बाकी है,
है यहा राम, यहा श्याम का ग्रागन है,

इसके परताप की तलवार का पानी ग्रभी ताजा है,
इसका हर शेर शिवाजी का ग्रभी जागा है,
इसके चौहान से हारा था, कोई हार के भागा है,
इसके हर लाल की बबरो सी बड़ी गरजन है,

इसकी चूनर मे हरे खेत लहर लेते है,
हवाए दौड के दामन से हवा देती है,
इसके चरनों में कोई रत्न का सौदागर है,
जिसकी लहरे भी चरन चूम के होती धनधन है,

इसी के लाल भगतसिंह का ये ग्रांगन है,
गले मे हार जमुन गंग का इसने ही पहन रखा है,
इसी का लाल, गाधी का निशां चरखा है,
ये मेरी मां है, मेरी शान, मेरी ग्रस्मत है,

[illegible]
जिसने खुद मौत का दामन भी अभी थामा है,
जो नही जानता, कहते हैं अमन किसको,
शमा भभके तो समझलो कि ये बुझने का चलन है

ये अजन्ता ये एलोरा, ये महल ताज का आलम,
कश्मीर ये गोकुल ये वृन्दावन सा नन्दन वन,
इसके चित्तौड़ से ये आवाज चली आती है,
वतन की आबरू खतरे मे है, मीरां के भजन,

पदमनी आज भी जौहर के लिए कहती है,
जमीनो आसमा कहते है, दिशा कहती है
शहीद आज भी अम्बर से हमें कहते हैं,
अपनी जागीर पे नजरे दिये बैठा वो सितमगर है,

हमें न मौत से डरना है, न मरना है, अमर होना है,
हम तो एक प्यार के बादल है, बरस पड़ना है,
मुश्किल हर राह की मिट जाएगी, आगे तू जरा बढ़,
नौजवां हिन्द की सरहद का निगहवां हरदम है।

●

गीत

रुबाइयाँ

मुक्तक

ओ मां ! वीणा विपुल वजा

—विशेश्वर शर्मा

ओ मां ! वीणा विपुल वजा ।
तार तार झंकार करे वह स्वर संसार सजा ।।
गूंज उठें गीतों की कड़ियां
स्वतः स्फूर्त भावों की लड़ियां ।
फैल रंग हृदय वासन्ती
राग रागिनी की फुलझड़ियां ।।
व्योमा ! सावन घन बनजा ।
वाणी देह विचार भाव सब अमृत मय कर जा ।।
प्रकटे पुण्य, प्रवल हो प्रभुता
विद्या ज्ञान सहज शुचि कविता ।
साधे सूत्र, सनातन रचना
हर उन्मेष उमड़ती सरिता ।।
सोमा ! सांस सांस रमजा ।
रोग शोक सताप दुःख के अंधियारे हर जा ।।
घर घर व्रज, मन मन वृन्दावन
प्रियतम साध्य, प्रीति ही साधन ।
जन जन गोपी ग्वाल राधिका
महारास वन जाए जीवन ।।
भोमा ! मन वांछित फल जा
सृष्टि दृष्टि मे ज्योति किरण सी एक साथ वह जा ।।

●

नील कमल

—विशेश्वर शर्मा

वैसे हर वस्तु बहुत श्वेत है
लेकिन यह श्याम रंग मेरा मन
सब कुछ धो डाला पर
भीतर का नील-कमल
पानी से असम्पृक्त
मुझमें यों रहता है
जैसे हो परित्यक्त
वैसे जल डूबा हर खेत है
लेकिन यह रीता-सा सावन-घन
देर तक बुहार है आंगन
लेकिन ये पत्थर जो काले थे
काले हैं
धरती का गर्भ तो अंधेरा है
बाहर-ही-बाहर उजियाले हैं
वैसे अस्तित्व यह सचेत है
लेकिन यह मुक्त पवन-सा जीवन ।

O

विजय का विश्वास लेकर चल रहा हूँ

-विशेश्वर शम

विजय का विश्वास लेकर चल रहा हूँ
इसलिए यह यात्रा बोझिल नहीं है ॥

विवशताओं की व्यथा लम्बी कथा है,
राह ही अवरोध बन जाती कहीं तो ।
रात भर चलकर सवेरा देखता हूँ
लौट आया, कल खड़ा था मैं यहीं तो ॥

फिर बिना अवकाश आगे बढ़ गया हूँ,
इसलिए यह आस्था अचल नहीं है ॥

दृश्य से होती हुई यह दृष्टि मेरी,
लक्ष्य ही के पास तो जाकर रुकी है ।
बोझ कितना ही रहा हो साथ लेकिन
यह कमर जब से तनी है, कब झुकी है ?

अलग ही आकाश लेकर जल रहा हूँ,
इसलिये कोई अँधेरा पल नहीं है ॥

समय है अनुकूल स्थितियां पक्ष में है
जो मिले संकेत सारे शुभ मिले है ।
सुख सभी करबद्ध सम्मुख है उपस्थित
फल रहे फागुन कई सावन खिले है ॥

मास में मधुमास लेकर फिर रहा हूँ
इसलिये लगता कहीं मरुथल नहीं है ॥

●

ाज को कोसना फालतू बात है

—विशेश्वर शर्मा

कुछ नये के लिये
कुछ गये के लिये
आज को कोसना फालतू बात है।
पांव चलता नही
दीप जलता नही
लक्ष्य खुद आके राही से मिलता नही।
हम पुकारा करें

हम विचारा करें
दृश्य आवाज से ता बदलता नहो ।।
हर हसो के लिये
हर खुशी के लिये
दर्द को कोसना फालतू बात है ।।
हाथ मे है नही
भाग्य रेखा
हाथ ने जो बनाई वो तकदीर है ।
कुछ अंधेरा लिया
कुछ उजाला लिया
यो बनो जिन्दगो एक तसवार है ।
रग हो के लिये
दग ही के लिये
भाग्य को कागना फालतू बात है ।
जोश जाता नही
रोष आता नही
लालमा है बड़ी युद्ध को जोन ले ।
मन दिया ना गया
मन लिया ना गया
चाहते ही रहे प्रीत ले –प्रीत ले ।
अब जहर ही पिये
दग जिगर के लिये
वक्त को कोसना फालतू बात है ।

●

कहें तो क्या !

—सावित्री परमार

अंधी सब गलियां हैं
अंधी हर भीड़ है
मिले उजास
कहां मिले
फैला है हर तरफ
जब अपना ही मैलापन।
जीवित है सब मगर धुंधियाए चहरे है
द्वारों से सड़कों तक कुहराए पहरे है
हवाओ मे तैर रहे मिमियाते स्वर
अधरों पर जम रहे पपडाये ज्वर
बोल कुछ
क्या बोले।
खो चुके अपना जब
धारदार पनापन।
रिश्तो मे तडक उठी सैकडो दरारें
कटे–पिटे नामो की बनावटी कगारें
तर्को से फटता है जोवन का दर्शन
कजलाया रहता है अपना ही दरपन
कहें तो क्या
क्या गुनें ?
आगया जब अपने ही
विचारो मे बौनापन।

प्रबोध गीत –

—विद्या पालीवाल

बन्द दरवाजे –
बन्द खिड़कियाँ –
सभी कुछ बन्द है ।
बाहर कोलाहल है ।।
अन्तरात्मा छटपटाती है –
बाहर आने के लिये –
तितली-सी सभ्यता युग की –
खद्योत सी द्युति जग की –
वातावेश में –
भरती है रंग पुन-पुन कर
आह ! नगर का परिवेश –
क्या रहा अवशेष ?
तम की ये सघन पर्तें,
कैसी घिर आई हैं ।
बन्द दरवाजे –
बन्द खिड़कियाँ –
सभी कुछ बन्द है ।
कराहती –

संस्कृति –
व्यग्र-वाणी में,
पुकारती –
तोड़ दो तुम ;
इस कृत्रिमता के –
गठबन्धन को ।
कुंठित कहाँ
अभी तुम्हारी प्रज्ञा दृष्टि ?
खोल दो -
ये बन्द दरवाजे -
आने दो
जाने दो –
शुभ्र, निर्मल रोशनी ।
तुम मनु की सन्तान,
तुम्हें रचनी होगी
अभिनव सृष्टि ।
ज्वार थम जायगा –
तम घट जायगा –
प्रथम किरण का दे उपहार
उषा ने –
फिर तुमको दुलराया है ।
बन्द दरवाजे –
बन्द खिड़कियाँ –
सभी कुछ बन्द है ।
बाहर कोलाहल है ॥

●

भूख अपराधी है

—सांवर दईया

आदमी नहीं भूख अपराधी है !
अपराध के लिए सजा
सजा के लिए जिन्दगी
कितने वर्ष काटे जेलों में
याद नहीं गिनती
तुम कहते हो बीत चुकी उम्र आधी है !
रिश्ते न जोड़ेगा कोई
मेरी चादर पर दाग है
कैसे दूँगा निमंत्रण
ठण्डी चूल्हे की आग है
तसले में रखी सूखी रोटियाँ बासी है !
धरती पर खड़ा था
आकाश ढोया न गया
घुटन तो थी जी में
खुल कर रोया न गया
फूटा ज्वालामुखी फिर भी लावा दाबी है !
आदमी नहीं भूख अपराधी है !

●

सूर्य-पुत्र नहीं हम....?

—साँवर दईया

फिर धरती की काया क्यों रौंदें ?
फिर आकाश का बोझ क्यों ढोयें ?
आग से घबराने वाले
हम आग क्या झेलेंगे
हम आग क्या उगलेंगे ?
विष्टा-समुद्र में जन्मे हम बिजबिजे गुबरैले हैं !
फिर धरती की काया क्यों रौंदें ?
फिर आकाश का बोझ क्यों ढोयें ??
अन्धेरा पीने के अभ्यस्त
हम स्वय अन्धियाये हुये
हम दुनिया क्या प्रकाशेंगे ?
सूर्य-पुत्र नहीं हम नाबदान के कीड़े हैं !
फिर धरती की काया क्या रौंदें ?
फिर आकाश का बोझ क्या ढोयें ?
रोटी की ओछी चोटें सहने वाले
हम रक्त बीज क्या बोयेंगे
हम क्रान्ति नाद क्या गुंजायेंगे ?
पग पग पर समझौतापरस्त हम दुम हिलाऊ कुत्ते हैं !
फिर धरती की काया क्यों रौंदें ?
फिर आकाश का बोझ क्यों ढोयें ??

●

[प्रस्तुति

गीत

—भगवती प्रसाद

गति को बाँधे
भाँवर देती आड़ी टेढ़ी धार,
फिर भी, काट रहे पानी को
पल पल में पतवार

तट पर सोते कुंज करौंदे
प्रतिबिम्बित से जल में,
सुनते ही पद-चाप नाव की
खो बैठे आकार—
श्वेत-श्याम के आलिंगन में
गहरे पैठ रहा मन
लाल-लाल वृत बूंद पड़ा, क्यों
पर्दे के उस पार—

....और बीत जाता है
हर दिन चुपके से
ऐसे ही मौन निशा को
जगती भर के संचालन का भार—
फिर भी, काट रहे पानी को
पल पल में पतवार।

खोई है राह कहीं....

—भगवती प्रसाद
गौतम

खोई है राह कहां उजड़े हैं बाग रे।
भूल गई कोयलिया गीतों के राग रे।
अपने ही राग रे।
अंधा युग, अंधी यह दुनियां अनजान है।
कौन कहे किस मन का किससे पहचान है।
शरमीली कलियों के भटके है भाग रे।
भूल गई कोयलिया....
गरमायी गलियों से मुझको क्या आस हो।
प्यासी ही घूम रही आज जहां प्यास हो।
नैनों में खटका अब हर काला काग रे।
भूल गई कोयलिया ..
बीत चुकी अनगिनती छवियां हो ध्यान से।
हार गई दुनिया एक चंचल मुस्कान से।
छोटी सी उम्र मगर कितने हैं दाग रे।
भूल गई कोयलिया...

●

चांदनी सीढ़ियां उतरती

—जगदीश 'सुदामा

फिर कोई गीत गुनगुनाती है,
चांदनी सीढ़िया उतरती ।
रहती है हरदम कुछ चोंकी-सी,
आती है तिमिर से उलझती ।
बनती है और बिगड़ जाती है,
भोली है कुछ नही समझती ।
जाने क्या-क्या बड़बड़ाती है,
बतराये बात नही करती ।
कहती है एक व्यथा अनबोले,
हठीली है बात नही सुनती ।
लहरो पर खूब उछलती है,
किसी से दो-रात नही बनती ।
बावरी, हर घड़ी मुस्कराती है,
नजर एक जगह नही ठहरती ।
चलती है, जैसे फिसलती हो,
दिन मे बाहर नही निकलती ।
खोई-खोई-सी कुछ रहती है,
रातो मे आंख नही लगती ।
जाने फिर क्या-क्या कह जाती है,
ठंडी-सी सांस एक उभरती ।

●

अनकही बात

—जगदीश

एक शंका पनपती रही है,
मैंने शायद किसी को छला है।
खिड़की जो—
खली नही,
खुली नही।
अँधियारा कैद मे पला है।
बरसाती दीवारें—
कुंकुम के हाथ,
अनकही बात।
देखते-देखते दिन ढ़ला है।
आँगन से—
बतियाते,
बही-खाते।
कितना खोया है, क्या मिला है।
शून्य में—
धुंध है,
द्वंद्व है।
क्या खबर, क्या बुरा, क्या भला है।

●

शारदीया तीन कविताएं

—जगदीश सुदामा

एक

सवेरे से शाम तक
धूप की तलाश ।
आँगन में उग आया कदलीवन,
और हवा
सरित में नहाई-सी
कपोती के पंख-सा
फैला आकाश ।।

दो

भीगे-भीगे से
शाम सवेरे हैं ।
फिर किसी सद्यः स्नाता ने
अटारी पर घट भर
आजानु विलम्बित
बाल बिखेरे हैं ।।

तीन

पूनम की रात ।
आकाश गंगा का दायाँ तट,
दर्प. पिघली चाँदनी
सौगात …… ।

●

चार मुक्तक

—जगदीश सुदामा

[१] नाम अपने जमाने का है एक मगर,
हम जहाँ रुक गये जिन्दगी रुक गई।
ये है अपनी नजर का असर देखिये,
हम नजर आ गये तो नजर झुक गई॥

[२] सुर्ख गालों पे लाली जो छाई कभी,
जुल्फ बिखरी हुई ना संभाली गई।
शाम के झुटपुटे में घटा क्या घिरी,
प्यालियां जाम भर कर उछाली गई॥

[३] रूप की धूप ऐसे बिखरने लगी,
शूल जितने भी थे, सब सुमन हो गये।
जिन्दगी यूं तो मायूसियों में कटी,
तुम नजर आ गये तो शकुन हो गये॥

[४] देखते देखते आसमा जल उठा,
आग जैसे सितारो में ही लग गई।
बदशकल आईना तो नही था मगर
चांद को चांदनी की नजर लग गई॥
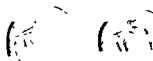
●

चार मुक्तक

--नरेन्द्र मिश्र

शख मंदिर का बजेगा अजान भी होगी ।
ज्योति गीता की रहेगी कुरान भी होगी ।।
मगर इस देश मे कन्याकुमारी से हिमालय तक,
वतन की आवरु सबका धर्म ईमान भी होगी ।।

×

कोरे भाषण से न इज्जत बचाई जायगी ।
भूमि हारी न तपस्या से लाई जायगी ।।
शक्ति गीता के उस गाण्डीव की जागी न अगर,
लाज माटी की न हरगिज बचाई जायगी ।।

×

दु:ख दर्द भरी आख को आंखो से देखना सीखो ।
हर गाव की मिट्टी के अरमान देखना सीखो ।।
पाषाण की प्रतिमा मे भगवान देखने वालों ।
पहले इंसान मे भगवान देखना सीखो ।।

×

देख लो घर मे ही कोई छिपा गद्दार न हो ।
जिसको गगा की रवानी से कोई प्यार न हो ।।
सिर कलम के न अलावा कोई दवा उसकी,
जो भी इस हिन्द की माटी का वफादार न हो ।।

दो चित्र : एक प्रश्न

—रमेशचन्द्र शर्मा

गर्मी

यह दिन चढ़ते-चढ़ते ही आ गयी,
आ कर हर रोम-रोम में छा गयी,
तन सब पसीने-पसीने हो गया,
क्या गर्मी जान मुसीबत में आ गयी ।

सर्दी

सुबह ही सुबह बाहर खड़ी थी,
निकला कि लगी बेशर्म बड़ी थी,
सिहर कर बिस्तरों में आ लेटा,
सचमुच सर्दी बड़ी ही कड़ी थी ।

एक प्रश्न श्वान से

कसम है तुझे भैरव की
ऐ श्वान ।
सच-सच बताना—
और क्या सीखा है तूने,
मनुष्य के साथ रह कर
दुम हिलाने के सिवा ?

●

दो मुक्तक

—विपिन जारोली

एक

आह से निकला वो गीत है।
आत्म-विजय जीवन-जोत है।
दीप की लौ से मिला जो पतंग ये -
बस कहते इसी को प्रीत है।

दो

जो झेले विपत्ति हजार है।
अपना ही जिसे संसार है।
परमार्थ में लीन रहे नित वो -
जन जन के गले का हार है।

●

श्मसान के भी.......

—कु. सत्यभामा
'अ

श्मसान के भी 'अनु' औलाद अगर होती।
मेरी ख्वाहिश है कि मेरी पैदाइश वहीं होती ।।
अजनबीपन ओढ़े बैठे
अपनों ही के अपने चेहरे
यूँ तो कहते कौन किसका ?
तब शवों की आग घेरे।
अरमान जलाये न जाते ख्वाहिश खुद चिता होती '
श्मसान के भी 'अनु' औलाद अगर होती।
दूर रहते विलाप के स्वर
सब शिला हृदय पर धरे
हर जलाने वाला सोचता तो
जाने कब जलना पड़े ।
अब है आग मेरे भीतर तब आग बीच में होती।
श्मसान के भी 'अनु' औलाद अगर होती।
घुटकर मरती सी जिन्दगी ये,
तब जीवन ही यही होता
मैं प्रेम पूछती हूँ
वहाँ प्रेम ही नहीं होता
शव पिता, माँ चिता और राख मैं होती।
श्मसान के भी 'अनु' औलाद अगर होती ।।

●

समूह गान

—नत्थूलाल मिश्र
'राह

हम भारत के सजग पहरुए मातृभूमि के लाल हैं।
नहीं किसी से वैर हमे है अपने हृदय विशाल है॥
अपने पथ से डिगा न पायें,
आंधी और तूफान हमें।
उठे कदम को बढा चलेंगे,
बलिदानो की आन हमें॥
शिवा, प्रताप के वीर वश-धर वैरी के हित काल हैं।
हम भारत के सजग पहरुए मातृभूमि के लाल है॥
मां के जैसा जिस धरती से,
मिलता रहा दुलार हमे।
यहां सदा आजाद रहे मिल,
जन्म-सिध्द अधिकार हमे॥
देश प्रेम की पुण्य धरोहर खिलते लाल गुलाब हैं।
हम भारत के सजग पहरुए मातृभूमि के लाल हैं॥
तोड़ प्रान्त की प्राचीरो को,
बढना है उस पार हमे।
कैसे हम सोते रह जायें,
गढना नव ससार हमे॥
हम हैं मां के लाल-बहादुर हमी जवाहर लाल हैं।
हम भारत के सजग पहरुए मातृभूमि के लाल हैं॥
राष्ट्र देवता है बस अपना,
भाषा एक भाव एक अपना।
चलो सजायें सुन्दर सपना,
भेद भाव सब टाल के॥
हम बेटे भूचाल के हृदय धधकती ज्वाल हैं।
हम भारत के सजग पहरुए मातृभूमि के लाल हैं॥

राजस्थानी कवितायें
गीत
श्रौर दूहे

अड़ुवा

—शिवराज छग

खेत तो सूको पड़्यो
सूंसाड़ मारै टेठ ताईं
भलै दो च्यार ऊभ्या है
खड़्या है खेतरे अड़ुवां ज्यूं
म्हारी इण धरा पर
सूख गयो है मांस ज्यांरो
नास ग्यो है रगत उण रिसतो रगारो
कालताईं रग गाजर ज्यूं
जिकांरी दीखती आख्या कसूंबल
लाल पील्लू ज्यूं —
दु खां रो पीजरो वणग्या
जिका अै खेलता दु.खसूं खिलौणो
समझनै, पण आजतो मुखरी घडी है
रात दु खरी टल गयी,
बयू उघाडो दरद-पीड़ारै ढकयोडै घावनै
जे धमक ज्यासी नूंवी पीढीरा नूंवा टावर
तो घ्यावस कुण देवला ?
आज जीवन देयनै जीवित वणावो
खेत में अकड़्योडै अड़ुवा नै सीखावो
मिनखपण रो पाठ, बन्धेला मान थांरो
हुवला खेत हरियो करस ।

●

सूरज गिरदावर

—शिवराज छंगाणी

भोरा न भोर
कागलै री कांव-काव अर
मोरा री मन मोवणो पिउ-पिउरी
अवाज सागै
सूरज गिरदावर
आपरी किरण-फीत सूं
हमेस धरती-गिगन रो
आंतरों नापै
ओ गिरदावर ड्यूटी रो पक्को
अर
खरो ठेठ ताईं जल-थल-अकास माथै
दिनूगै सूं सुईं सिझ्या ताईं
उजली आसा अर उजलै विस्वास सागै
काम काज करै —
अंधारै रा उल्लू, ऊंघी लटकण आली
चमचेड्या इयं नै अणदेख्यो करै
ईं सूं डर'र निसांसा भ' रै—
पण; सूरज गिरदावर कद ध्यान धरै
आप आलै फीतै सूं नाप'र सगलां रो भाग
बरोबर बांटै, न्याव छांटै
अर धरती रै जोवण-नै हुलसावै ।

●

अंधेर-घुप्प

—धनञ्जय वर्मा

मैं नींद में हूँ
नी तो
तो जागतो हूँ
घा—टा' कोनी
लोग कं' वे है के जिको जिन्दगी ` ो कं' मर्‌
घा घा' कोनी

केवता ही ग्राया है कंवरणद्यो
छाती मे धम्मीड़ा सैंवरणद्यो
खुरलो चरणो चावै, वै सेचल क्यूं च
दीदा फाड़ं ढूंढै जद माथै री जूं मं
कैवत मे गरीव धिग्गाणै रा शरीफ
अं भूखा उठै धाया सोवै
जहर तक रो असर नं होवै
वोलै जद—खारा ज़हर तूंवड़ा
चे'रै स्यू भी सूंघड़ा
दूसरा नै पुलता देखै
जल–भुण होज्या भूंगड़ा

ग्रोया री है वठै ही रेवणद्यो
गोल पीदं रे कुण सी ठेगणद्यो
रावड़ी नै सरायी तो दांता के चिप्पण
तवो ग्राकरो ग्रायो तो ग्रूपर सिक्कण

सुणी है–'राग्री रा भाव राते ही गया
पैलड़ा सा मिनख ग्रब कोनी रै'या'

ग्रै वी कोनी रै' सी, करल्यो कम वेसी
जित्तो वर्ण बणाल्यो ग्रपरथली चीणाल्यो
फेर ग्रा हवा थोथ घेरै नी घेरै
ग्री खातर ही मैं धुंग्रै ज्यूं चढ़ण लागर्‌यो हूँ
बाकी वच्या सांस सोनै स्यूं मढण लागर्‌यो हूँ
का'ल कुण देख्यो है किसो' क के ग्रगसी
फेर ग्रो हसो मोती चुगसी'क नी चुगसी

ग्रै है है के लाख रुपयाँ री बात कैयी है
भाख पाटर्ण मे कित्ती' क के टेम रै'यी है
ग्राछया तो ग्रा बताग्रो
मैं कित्ती कोग्री री जमीन दवा सकूं हूँ,
थे ग्रा सोचो'क कित्ता नै धूल.चटा सकूं हूँ
थारै में कित्ता हार्स पावर शक्ति है
पाखंडिया री थारै प्रति कित्ती ग्रटूट भक्ति है
बींया रे नफै में थानै नुकसान कोनी
श्रद्धा सारू को ग्री देवै लेर्ण में ग्रपमान कोनी
भलै रां घरा जायेड़ा हो भर पेट खायेड़ा हो
तो ग्रपणी खीचो ग्रपणी ग्रोढ़ो
सुख रो नींद दिन में पोढ़ो

अर थारी इज मैगन मायै
पलण माला
तूं काई बोलै ?
कायंरो है रे थारै इतरो गुमान ।
हद करग्यो तूं तो
नादिरसा अर तैमूर जिसागूं
आगै निकलग्यो अित्याचारां में,
क्यूं सान गमावै रै
हत्यारा ! बइमान !!
थारै इज कारण राधवावां
हुयग्यो विधवावां
बैनां हुयग्यी भायां बाथरी
टाबरिया बिलखै रोटी नै ।
अै भारत पायोडा
मिरखारथी किरोड नैड़ा
जो नैं थारै रोवै है,
अोज्यूं ईं सैताण ! संभलजा
मानखो सगलो थारै पापां खानी जोवै है ।
मान लै कैणो म्हारो
दे दै आजादी बगाल्या नै
नईं तो ले लैसो अै आपई बूक्यो रै ताण,
पछै काईं माजनो रैसी थारो ?
क्यूं मानखो गमावै है ।
देख, सामो देख चेत सम्भलजा
जमराज तनै बुलावै है ।

●

म्हारी समझ में आई नही !

म्हारी समझ में आई नहीं !
जाऊँ तो जाऊँ कठे ! म्हारी समझ में ..
वाही धोली धूप पछे काली रात पड़ जासी
ओ होती आयो जुगां सूं वाही हो जासी
रातां मांही कदेही सुख रो सपनो देखूं और
कुण जाणे कदेही नीदड़ली आ जासी ।
बिन धाप्या नीदड़ली चाकी री,
मीठो राग सूं उड़ जासी ।
चड़ा-चड़कल्या लाग्या चाले,
अब तो मन मार मसोड़ सूं उठणों पड़सी ।
वा चाय वणी घणी मीठी,
मूंडो मरोड़ खांत सूं पीणी पड़सी ।
वास-गुवाड़ा रा मिनख निकल पड़्या,
अब मजदूरी पर जाणो पड़सी ।
दिन आत्यां तक कस न काम कर्‌यो,
कोल पर पाछो घरे आणों पड़सी ।
ओही रोज रो रह्‌यो है जो,
जो जिन्दगानी तक चालतो रहसी ।
इण मांही फेर बदल करूं कियां
आ म्हारे समझ में आयी नही !
जाऊँ तो जाऊँ कठे !
आ बात समझ में आयी नही ?

चाल अेकलो !

· [illegible]

सुण थारी आवाजा कोई—
आवैनी तो चाल अेकलो !
चाल अेकलो, चाल अेकलो, चाल अेकलो, चाल !
थासूं बात करैनी कोई,
डरै था सूं ही सगळा ।
थारे साथ चलै न कोई,
फेरै सब मूण्डो सगळा !
तो भी थारा जी में जो व्है—
सगळा जोर सूं कैतो चाल !
चाल अेकलो, चाल अेकलो, चाल अेकलो, चाल !
साथी थारा पाछा फिर जा,
घोर अंधारा मांही जाता ।
कोई थारै साथ न आवै—
थनै न देखै फिरनै पाछा ।
तो भी कांटा रा पथ पर थूं—
लोही भरता पग सूं चाल !
चाल एकलो, चाल अेकलो, चाल अेकलो, चाल !
कठै न उजियालो दिखै नै—
घटा टोप व्है रातां सगली ।
ठौर ठौर रा द्वार जुड़्या व्है
तूफानी व्है मजलां अगली ।
तो भी थारा कड़क हाड़ने
चाल अेकलो ही थूं चाल !
चाल अेकलो, चाल अेकलो, चाल अेकलो, चाल !

●

डिंगल दोहे

भवरां भट बैठाण ज्यों, आवण री तजवीज ।
झूलै झोट्या देवस्यां, आई तडकै तीज ।।

×

चढ चढ होदै गोरड्या, बढ बढ गाठक देय ।
तड़ तड आवै कामड्या, पी रो नाम न लेय ।।

×

रूखां रूखा आंतरो, मिनखा मिनखा फेर ।
खड बाढ पर कारणें, काट बिमेरं बेर ।।

×

सूरा प्यारी वीरता, कामी प्यारो काम ।
कायर प्यारो कालजो, नरा पियारो नाम ।।

×

पूत पिता री पाग री, पत रखै थारै हाथ ।
पाछो पग मत मेल जे, घाट घटावै माथ ।।

×

जणियो जी दिन कारणं, वो दिन आया आज ।
कै मरजे, कै मारजे, मता गवाजे लाज ।।

प्रस्तुति ३

.सं.	रचना का नाम	लेखक का नाम	व पता
ला देश : कुछ कवितायें			
	पश्चिमी बंगाल का एक गांव	हामिद खान	राज.उ. मा. विद्यालय, पीपाड़ सिटी (जोधपुर)
	बेसहारा शरणार्थी	डॉ राजानन्द	शकर क्वार्टर सत्यनारायण का चौक, बीकानेर
	अमन के फरिश्तों के नाम	ब्रजेश 'चंचल'	शारदा सदन, बृजराजपुरा कोटा—6
	पूरब की धरती	भवरसिंह सहवाल, 'व्याघ्रपज्जा'	अनुदेशक, राजकीय हिन्दी अभिनवन प्रशिक्षण केन्द्र, मसूदा (अजमेर)
	सहानुभूति	बी. एल. अरविन्द	भवानीमण्डी
	राष्ट्रीय एकता ?	,,	,,
	सूत्रपात	वासुदेव चतुर्वेदी	रा. उ. प्राथमिक शाला, छोटीसादड़ी
	सोनार बांगला एकला चालो	विमला कपूर	द्वारा श्री बी. एन. कपूर, त्यागी वाटिका, जेल वेल, बीकानेर
विताये			
	वे कहते है...	डा. राजानन्द	शकर क्वार्टर, सत्यनारायण का चौक, बीकानेर
	त्यौहार	,,	,, ,,
	नही बन पाते गीत	,,	,, ,,

इतना कुछ होने पर भी	प्रेम सक्सेना	10, रतनबाई क्वार्टर, बीकानेर
किन्हीं एकान्त क्षणों में	,,	,, ,,
दोस्त के नाम	भागीरथ भार्गव	राज यशवन्त उ मा. विद्यालय, अलवर
दगाबाज	,,	,, ,,
अगली घोषणा	,,	,, ,,
मन-शिशु का प्रश्न	भगवतीलाल व्यास	विद्या भवन स्कूल, उदयपु
मैं अनागत का पिता	,,	,, ,,
कुछ छोटी कविताए	,,	,, ,,
नया कोट.		
पुरानी आदत	श्रीकृष्ण विश्नोई	श्री जैन उच्च माध्यमि शाला, बीकानेर
अमृत मर गया	,,	,, ,,
कलाकार	,,	,, ,,
नुमाइश	ओम केवलिया	शिक्षक प्रशिक्षण विद्या बीकानेर
तुम्हारा अपराध	,,	,, ,,
दुःख	मीठालाल खत्री	राज माध्यमिक शाला, सायला (जालोर)
सुबह से शाम तक	,,	, ,,
मौत की बाहों मे	वेद शर्मा	शिक्षक प्रशिक्षण महा-विद्यालय, बीकानेर
संध्या के झुटपुटे में	,,	,,

क्षण-बोध	सावित्री परमार	श्री महावीर दि. जैन हा. सैं. स्कूल, जयपुर
मौन आर्त्तनाद	,,	,,
एक बजर झलक	,,	,,
भाव मूल्यांकन	,,	,,
कुछ ठण्डे आयाम	,,	,,
परम्परा की गिरफ्त	सांवर दईया	द्वारा मानीरामजी दईया, महर्षि दयानन्द मार्ग बीकानेर
रक्त रहस्य	,,	,,
भौगोलिक परिभाषाएं : नये परिवेश में	अमरसिंह पाण्डेय	शिक्षा प्रसार अधिकारी, पं. सं. वैर (भरतपुर)
मुर्दे को मौत का भय	जगदीश 'उज्ज्वल'	राजकीय माध्यमिक विद्यालय, लूणकरणसर (बीकानेर)
हम विवश हैं	,,	,,
आस्था का जन्म	,,	,,
प्रवाह	,,	,,
विभाजक-चक्र	विमला भटनागर	महारानी कन्या उ. मा. विद्यालय, बीकानेर
स्याह साये-यादें	,,	,,
विद्रूत समय	अर्जुन 'अरविन्द'	काली पल्टन रोड, टोंक
सूक्ष्म हैं	अफजल कांकरोली	स. अ. उच्च माध्यमिक विद्यालय, कांकरोली, (उदयपुर)

सुपिर मानव	हरगोविन्द गुप्ता	व. प्र राज. उच्च माध्यमिक विद्यालय, चेचट कोटा
बूढी पीढ़ी	कु. सत्यभामा शर्मा 'मनु'	36।895 पुलिस लाइन्स, अजमेर
बर्फ की सिल्लियों का भारीपन	भवरसिंह सहवाल 'व्याघ्रपज्जा'	अनुदेशक, राज हिन्दी अभिनवन प्रशिक्षण केन्द्र, मसूदा (अजमेर)
मुक्ति का उपहार	जीवन महता	राजकीय महाविद्यालय, भीलवाडा
योद्धा	,,	,, ,,
अब यही सच है	करणीदान बारहठ	मालारामपुरा (सगरिया—श्रीगंगानगर)
एक नन्हा-सा गुलाब	विद्या पालीवाल	राजकीय केन्द्रीय कन्या उच्च माध्यमिक विद्यालय, जयपुर
प्रश्न चिन्ह हूँ	प्रेमचद कुलीन	17/252 बृजराजपुरा, कोटा-6
भटक गया है मन	,,	,, ,,
स्थिति : समाधान	,,	,, ,,
दो मिनी कविताएं	,,	,, ,,
विसर्जित हुआ दुःख	जनकराज पारीक	प्रधानाध्यापक, ज्ञान ज्योति माध्यमिक विद्यालय, श्रीकरनपुर

क्षण-बोध	सावित्री परमार	श्री महावीर दि. जैन हा सै. स्कूल, जयपुर
मौन आर्त्तनाद	,,	,, ,,
एक बजर झलक	,,	,, ,,
भाव मूल्यांकन	,,	,, ,,
कुछ ठण्डे आयाम	,,	,, ,,
परम्परा की गिरफ्त	भंवर दईया	द्वारा मानीरामजी दईया, महर्षि दयानन्द मार्ग बीकानेर
रक्त रहस्य	,,	,, ,,
भौगोलिक परिभाषाएं : नये परिवेश में	अमरसिंह पाण्डेय	शिक्षा प्रसार अधिकारी, पं. स. वैर (भरतपुर)
मुर्दे को मौत का भय	जगदीश 'उज्ज्वल'	राजकीय माध्यमिक विद्यालय, लूणकरणसर (बीकानेर)
हम विवश हैं	,,	,, ,,
आस्था का जन्म	,,	,, ,,
प्रवाह	,,	,, ,,
विभाजक-चक्र	विमला भटनागर	महारानी कन्या उ. विद्यालय, बीकानेर
स्याह साये-यादें	,,	,, ,,
विद्युत समय सूक्ष्म है	[illegible]	काली पल्टन र उच्च

नील कमल	विश्वेश्वर शर्मा	श्रीकृष्णकुंज निकुंज भट्टि चोहटा उदयपुर
विजय का विश्वास लेकर चल रहा हूँ	,,	,, ,,
आज को कोसना, फालतू बात है	,,	,, ,,
कहे तो क्या	सावित्री परमार	श्री महावीर दि. जैन. हा. से. स्कूल, जयपुर
प्रबोध गीत	विद्या पालीवाल	रा. केन्द्रीय कन्या उच्च मा. शाला जयपुर
भूख अपराधी है	सांवर दईया	द्वारा मनीराम जी दईया, महर्षि दयानन्द मार्ग बीकाने
सूर्य-पुत्र नहीं हम ?	,,	,, ,,
गीत	भगवतीप्रसाद गौतम	रा. उ. मा. शाला, भवानीमण्डी
खोई है राह कहीं	,,	,, ,,
चांदनी सीढियां उतरती	जगदीश 'सुदामा'	श्रीकृष्ण निकुंज भट्टियानी चौहटा, उदयपुर
अनकही बात	,,	,, ,,
शारदीया तीन कविताएं	,,	,, ,,
चार मुक्तक	,,	,, ,,
एक दिवस	कुन्दनसिंह 'सजल'	राजकीय सैकण्डरी स्कूल, गुरारा (खण्डेला, सीकर
सावन की सांझ	जीवन महता	राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा
चार मुक्तक	नरेन्द्र मिश्र	रा उ मा विद्यालय, धरनोद (चित्तौड़गढ़)

दो चित्र : एक प्रश्न	रमेशचन्द्र शर्मा	रा. उ. मा विद्यालय, श्रीनगर (अजमेर)
दो मुक्तक	विपिन जारोली	जवाहर विद्यापीठ, उ मा. वि० कानोड़ (उदयपुर)
श्मसान के भी	कु.सत्यभामा शर्मा	36/893, पुलिस लाईन्स, अजमेर
समूह गान	नत्थूलाल मिश्र 'राही'	राज. बुनियादी प्राथमिक शाला, नं. 2 देहलीगेट, अलवर

राजस्थानी कविताए गीत और दूहे

अडुवा	शिवराज छंगाणी	नत्थूसर गेट, बीकानेर
सूरज गिरदावर	,,	,,
अन्धेर धुप्प	धनजय वर्मा	नगरपालिका के सामने, बीकानेर
चेतावणी याइये नं	भवरलाल सुथार 'भ्रमर'	ईदगाहबारी के अन्दर, बीकानेर,
मरजादा	,,	,,
म्हारी समझ में आई नही	ओमदत्त जोशी	साहित्य सदन, मसूदा, (अजमेर)
पीला पड़ग्या	जगदीश 'उज्जवल'	रा. मा. विद्यालय, लूण-करणसर (बीकानेर)
चाल अकेलो	विपिन जारोली	जवाहर विद्यापीठ, उ. मा. वि. कानोड (उदयपुर)
डिंगल दोहे		राज. उ. प्राथमिक शाला, चांदसेन, तहसील-मालपुरा (टोंक)